अध्याय 4

उत्तर-आधुनिक विमर्श और अनुवाद

भारतीय परंपरा में शब्द को ब्रह्म माना गया है। 'ओल्ड टेस्टामेंट' में भी कहा गया है इन दी बिगेनिंग वाज़ दी वर्ड। अर्थात् शब्द का अस्तित्व दोनों विचार एवं सांस्कृतिक परंपराओं में समान भूमि पर स्थित हैं। शब्द से ही विश्व अस्तित्व में आता है। शब्द के बिना न तो संसार साकार होता है, न ही मनुष्य संसार की वस्तुओं-विचारों से अवगत हो सकता है और न ही अन्य मनुष्य को इनसे अवगत करवा सकता है। शब्द क्या है? व्यक्ति के अनुभव और विचारों का अनुवाद है। इम्मैनुएल कांट (1724-1804) का मानना था कि मनुष्य के अनुभव, उसके विचार आदि मूल में है, भाषा के पहले है (अप्रायोरी)। रचनात्मकता अपने आप में अनुवाद है। जो सोच व्यक्ति के जेहन में आती है वही रचना है और जब व्यक्ति उसे लिखता है वह उस अनुभव का अनुवाद है। इस प्रकार तमाम रचनाएँ अनुवाद है। क्रोचे अभिव्यंजनावाद में कहता है कि कलाकार विशुद्ध आत्म-सुख के कारण आनुषंगिक आनंद को रंग, रेखा, स्वर, शब्द आदि में पुनः निर्मित करते हुए अभिव्यक्त करता है। क्रोचे अभिव्यक्ति (translation of the aesthetic fact into physical phenomenon) को सहजात की अनुभूति और आत्मा में होने वाली उसकी अभिव्यक्ति का चौथा (अंतिम) स्तर मानता हैं जहाँ जनसाधारण इसका बोध कर सकते हैं। (क्रोचे; ड. स. मिश्र से उद्धृत पृ. 268-269) यदि यह मान लिया जाए तो शब्दों के द्वारा इनकी अभिव्यक्ति अनुवाद है। इस अर्थ में संप्रेषण की समग्र प्रक्रिया को ही अनुवाद की

प्रक्रिया कहा जा सकता है। इस बात को प्लेटो के अनुकरण सिद्धांत से जोड़ कर देखें तो रचना में और भी नयापन जुड़ जाएगा। प्लेटो काव्य को ईश्वर में विद्यमान भाव या विचार के अनुकरण का भी अनुकरण मानता था और अनुकरण होने पर निर्मित होने वाली रचना क्रमशः (तीन बार) मूल को भाव या विचार से आगे बढ़ते हुए नये अर्थ को समेटती चली जाती है। इस दृष्टि से देखे तो रचनाकार के मन में रहा भाव-विचार शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त होने पर रचना का रूप लेता है और फिर अनुवादक मूल पाठ को ग्रहण करते हुए उसका अनुवाद करता है। इस प्रकार रचना हर बार नयी होती जाती है और जब रचना का अनुवाद होता है तब वह एक बार फिर नये अर्थ-संदर्भ को ग्रहण करती हुई नया जीवन प्राप्त करती है।

मनुष्य जीवन में जो कुछ अनुभव करता है, ज्ञान प्राप्त करता है, उसे अपनी स्मृति में संचित करता है। मनुष्य अपने संचित अनुभव, ज्ञान, विचार आदि को भाषा के द्वारा प्रसारित करता है, लागू करता है और भाषा से नये ज्ञान का सर्जन भी करता है। अनुभव भाषाहीन होता है। भाषाहीनता से भाषा में आने पर वह परिवर्तित होता है। यह परिवर्तन भाषा के कारण होता है। इस प्रकार मनुष्य के अनुभव भाषा में आने पर अनूदित होते हैं। अनुभव तो सब के पास हैं, किंतु जब तक उसे भाषा नहीं मिलती, भाषागत अभिव्यक्ति नहीं मिलती तब तक वे अनुभव प्रकाश में नहीं आते। मुख्य धारा के लोगों के पास भाषागत अभिव्यक्ति करने की सुविधा पहले से ही बनी हुई है। लेकिन जो लोग परिधि पर थे, वे अपने अनुभवों को इस लिए भाषा में परिवर्तित नहीं कर सकते थे क्योंकि समाज में प्रचलित भाषा उन अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए अभी निर्मित नहीं हुई थी। जो अपने अनुभवों को समाज में प्रचलित भाषा में परिवर्तित नहीं कर सके थे, उन्हें भाषागत अभिव्यक्ति देने का काम अनुवाद ने किया। क्योंकि अनुवाद का अर्थ ही है अनुभवों और विचारों को भाषा देना। आज इस रूप में परिधि पर रहने वाले दलित, ब्लैक आदि ने अपने अनुभवों को वाचा

दी है।

4.1 देरिदा और अनुवाद

साहित्य में भाषा विचार-विश्लेषण का केन्द्र बनते ही अनुवाद की अवधारणाएँ नई दिशा की ओर अग्रसर होती है। भाषा के संरचनागत अध्ययन के नये आयाम खुलने से अर्थ संप्रेषण और प्रभाव-समता से जुड़ी अनुवाद की अवधारणा में भी नये आयाम खुलते हैं। देरिदा के विखंडनवादी विचारों से अनुवाद की मूल अवधारणा में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। देरिदा के विचारों का अध्ययन करने से पूर्व देरिदा के विचार-दर्शन को प्रभावित करने वाले अन्य विचारकों के चिंतन का अध्ययन करना आवश्यक बन जाता है।

4.1.1 देरिदा पर अन्य विचारकों का प्रभाव

देरिदा के विचार संरचनावादी चिंतन से गहन रूप में प्रभावित रहे हैं। देरिदा के भाषा संबंधी विचार रोमन जैकोब्सन और सस्यूर के भाषा चिंतन का प्रभाव दिखाई देता है। संरचनावाद के मूल में सस्यूर के विचार है। उत्तर-संरचनावादी अवधारणा भी सस्यूर के विचारों से अनुप्राणित होती रही है। संरचनावाद में पाठ में निहित अर्थ को प्राप्त करने के लिए भाषा को महत्वपूर्ण आधार-तत्व के रूप में प्रस्थापित किया गया। इसमें पाठ में निहित दूसरे अर्थ को खोजने के लिए भाषिक संरचना पर सर्वाधिक बल दिया गया। यहाँ भाषा विचार और विश्लेषण का मुख्य आधार बन जाती है।

सस्यूर का मानना है कि भाषा व्यक्ति के बोलने के प्रयासों द्वारा निर्मित नहीं होती वरन् वह समूह या समुदाय के बोलने के प्रयासों से निर्मित होती है। इसका अर्थ यह है कि भाषा समुदाय विशेष की परंपराओं, मान्यताओं और उसके समाज एवं संस्कृति से प्रभावित होती है। या यूँ कहा जाए कि भाषा केवल वर्ण-अर्थ का समूह न होकर, समुदाय विशेष की सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थ-छवियों का प्रतिबिंबन करती है।

सस्यूर भाषा को संकेतों की व्यवस्था मानता है। इस व्यवस्था में सभी संकेत

परस्पर संबद्ध रहते हैं। संकेतों के अलग रहने पर किसी संकेत का कोई अर्थ नहीं रहता है। सस्यूर का कहना है कि सभी शब्द-चिह्न एक-दूसरे से भिन्न होने पर भी आपसी अंतर से ही अर्थ ग्रहण करते हैं। इस बात को भाषा संरचना के अध्ययन से समझा जा सकता है।

सस्यूर संकेतों की भिन्नता का विचार प्रस्तुत करता है और अर्थ को प्रक्रियागत मानता है। उसका मानना है कि इस प्रक्रिया की पहचान करने पर ही शब्द के अर्थ का निर्धारण किया जा सकता है। सस्यूर का संकेतों की भिन्नता का विचार सीमित प्रक्रिया के बाद स्थिर हो जाता है जहाँ से शब्द या पाठ के अनुपस्थित अर्थ का बोध किया जा सकता है। सस्यूर के अनुसार आलोचक का काम भी यही है कि वह भाषा की गहन संरचना में निहित अनुपस्थित को खोज निकाले।

देरिदा के चिंतन को प्रभावित करने वाले सस्यूर के इन विचारों का विस्तृत अध्ययन पहले अध्याय के तीसरे भाग में किया जा चुका है।

उत्तर-आधुनिकता और उत्तर-संरचनावाद के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर रोलाँ बार्थ ने 'The death of the author' लेख में कहा कि 'लेखक की मृत्यु' के बाद ही पाठक का जन्म होता है। अर्थात् पाठक जब तक लेखक के विचार-प्रभाव से मुक्त नहीं होगा तब तक पाठक को उचित स्थान नहीं मिलेगा। यहाँ पाठ के अर्थ निर्धारण में पाठक की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया जाता है।

संक्षेप में संरचनावादी चिंतन के प्रभाव से भाषा में संरचना के अध्ययन के नये आयाम उद्घाटित हुए। अर्थ का बोध शब्द से अधिक संरचनागत हो गया। संरचना को आधार बना कर पाठ का विवेचन-विश्लेषण इस प्रकार किया गया कि पाठ में अर्थ की अनेकता प्रस्तुत होने लगी। यह वही समय है जब पाठ के भी 'सुपाठ' और 'कुपाठ' जैसे भेद किए गए। इन सब से निश्चित रूप से अनुवाद कार्य प्रभावित हुआ। अनुवाद के विकास क्रम में इसे उत्तर-आधुनिकता के पूर्व का अनुवाद का आधुनिक पक्ष माना

जा सकता है।

4.1.2 देरिदा का विचार-दर्शन

देरिदा ने विखंडनवाद को प्रस्थापित करते हुए ऐसा विचार-दर्शन प्रस्तुत किया जिससे चिंतन की सभी अवधारणाओं में पुनः चिंतन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। देरिदा के इन विचारों से अनुवाद की अवधारणा में मूलगामी परिवर्तन हुआ।

सस्यूर मानता था कि भाषा समुदाय द्वारा निर्मित होती है। भाषा जो किसी समुदाय की सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थ-छवियाँ अपने में समेटे रहती है, वह पाठ के विखंडित होने के साथ उभर आती है। स्रोत भाषा की सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थ-छवियों को लक्ष्य भाषा में अनुवादक पुनः सृजित करता है। यह अनुवाद का उत्तर-आधुनिक स्वरूप है। अनुवाद इन दो भाषाओं में उपस्थित संस्कृति के बीच संवाद स्थापित करने के दायित्व का निर्वाह करता है। इस प्रकार अनुवाद पाठ से संबद्ध दो भाषा-संस्कृतियों के बीच व्यापक परिप्रेक्ष्य में संवाद स्थापित करता है। दो पूर्णतः भिन्न-भाषी व्यक्तियों के बीच इस प्रकार का संवाद करके उन्हें एक-दूसरे के अधिक निकट लाने का महत्वपूर्ण कार्य आज अनुवाद के द्वारा किया जा रहा है।

सस्यूर संकेतों की भिन्नता का विचार प्रस्तुत करते हुए एक बिंदु पर आकर रुक जाता है जहाँ अनिश्चय और अन्य विकल्प न रहने की स्थिति में अर्थ का निर्धारण करना संभव प्रतीत होता है। देरिदा संकेतों की भिन्नता की प्रक्रिया को अनंत मानता है, जहाँ प्रत्येक संकेत भिन्नताओं की अनंत शृंखला से बना है।

यह बात निर्विवाद है कि अनुवाद पाठ का नहीं, परंतु पाठ के अर्थ का किया जाता है। उत्तर-संरचनावाद और विखंडनवाद ने इस बात पर जोर दिया है कि अर्थ किसी एक शब्द या संकेत में नहीं रहता, वरन संकेतों की शृंखला के बीच झिलमिलाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अब अर्थ को पकड़ना, अर्थात् उसे निश्चित करना इतना आसान नहीं है। उत्तर-आधुनिक युग में पाठ के प्रसिद्ध अर्थ और संकेतों

की शृंखला के बीच झिलमिलाते अर्थ-बोध के कारण अनुवाद की अवधारणा में मूलगामी परिवर्तन आ जाता है। आधुनिक काल में ambiguity (संदिग्धता या द्वयार्थकता) कविता का गुण माना जाता रहा है जिसमें शब्दार्थ की संदिग्धता को, अनेकार्थता को गुण माना जाता था। उत्तर-आधुनिकता में यही बात अनुवाद के संदर्भ में इस रूप में कही जा सकती है कि चूंकि अर्थ की अनंतता है अतः ambiguity का अनुवाद की एक विशेषता बनने की संभावना बनी रहती है। संभवतः इसीलिए अनुवाद रचना के करीब हो जाता है।

देरिदा के अनुसार अनुवाद करते समय पाठ का विखंडन सबसे ज्यादा होता है। अनुवाद में स्रोत भाषा पाठ के प्रोक्ति, वाक्य, पद, शब्द, ध्वनि के स्तरों को विखंडित करते हुए लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। जब पाठ विखंडित हो जाता है तब शब्द या पाठ के अनेक अर्थ खुलकर सामने आने लगते हैं। संकेतक और संकेतित की अनंत प्रक्रिया शुरू हो जाती है। यूँ अनुवाद करते समय पाठ के विखंडित होने से अर्थ निर्धारण का आधार अस्थिर हो जाता है। ऐसे में अनुवाद मूल के अर्थ का संवाहक ही नहीं रहता वरन उसमें परिवर्तन और परिवर्धन करने की संभावना भी बनने लगती है।

इस बात को एक सामान्य उदाहरण से समझा जा सकता है। रोको मत जाने दो - का अर्थ क्या रोको, मत जाने दो है या रोको मत, जाने दो है। यह केवल व्याकरणिक विराम चिह्नों के कारण हुआ अर्थ परिवर्तन (अथवा खेल) नहीं है। संदर्भगत परिवर्तन से इसके गंभीर अर्थ भी हो सकते हैं। इसका एक अलग नारीवादी अर्थ भी निकलता है। यह नारीवाद के पक्ष-विपक्ष की दृष्टि से भी भिन्न हो जाता है। नारी को रोको, मत जाने दो अथवा नारी को रोको मत, जाने दो भी हो सकता है।

उसी तरह एक और उदाहरण लिया जा सकता है। प्रसाद के 'आँसू' काव्य की "जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छायी, दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई" (प्रसाद पृ. 20) पंक्ति में 'दुर्दिन' का अर्थ 'मेघाडंबर युक्त आकाश' के

अर्थ में लिया जाता है। बंगाली में बादल भरे आसमान को दुर्दिन कहा जाता है। प्रसाद ने इसका प्रयोग छायावादी विधान के अनुसार किया होगा ताकि एक नयापन भाषा में प्रकट हो। छायावादी काव्य पर बंगाली का प्रभाव भी रहा है। पर हिन्दी में दुर्दिन में रहे 'दुर्' अथवा 'दुः' का अर्थ बुरा है। तो इसका अर्थ 'बुरा दिन' भी है, हो सकता है। विरह के दिन बुरे ही होते हैं, इस बात को मान लेने पर भी क्या अनुवाद में 'बुरे दिन' और 'दुर्दिन' एक ही अर्थ छाया दे सकते हैं।

उसी तरह "ढोर / ढोल गँवार सूद्र पसु नारि, ये सब ताड़न / तारन के अधिकारी" अनुवाद की दृष्टि से अत्यंत विवादित पंक्ति है। अब यहाँ पहला प्रश्न है कि 'ढोर' है अथवा 'ढोल' है; उसी तरह 'ताड़न' है या 'तार'? दूसरा प्रश्न है ढोल, गँवार, सूद्र, पसु और नारि अलग अलग है अथवा 'ढोर' के समान 'गँवार' और 'पसु' के समान 'सूद्र' और 'नारि' है... 'ढोर' विशेषण और 'पसु' को देहरीदीप की तरह प्रयुक्त किया है... इत्यादि। 'तारन' शब्द को स्वीकार कर तथा ढोल, गँवार, सूद्र, पसु तथा नारि को अलग-अलग स्वीकार कर के तथा ढोर एवं पसु को विशेषण के रूप में स्वीकार कर इसका अर्थ लगाने पर तुलसी के अर्थघटन एवं मूल्यांकन में भी अंतर पड़ जाता है। हिन्दी का उत्तर-आधुनिक विमर्श इस विवाद में पड़ा हुआ दिखता है जब तुलसी की नारी दृष्टि एवं दलित दृष्टि की चर्चा की जाती है। अनुवाद में ये सारे प्रश्न उपस्थित होंगे जब अनुवादक की अपनी एक पहचान होगी।

आज अनुवाद-कार्य में मूल से न बंधने का एवं स्वतंत्रता लेने का जो विचार दृष्टिगत हो रहा है, वह देरिदा के चिंतन से प्राप्त होता है। आज अनुवाद में जिस प्रकार के प्रवाह, सहजता और मौलिकता की माँग की जा रही है वह अनुवाद की सृजनशीलता को ही इंगित करती है। इसे देरिदा समझाते हुए लिखते है कि, "अनुवाद मूल के अर्थ का संवाहक मात्र नहीं, बल्कि एक ऐसा प्रारूप होता है, जिसमें अनुवादकर्ता के लिए पाठ में परिवर्तन परिवर्धन करने की गुंजाइश रहती है।.....

अनुवाद एक शिशु की तरह होता है जो प्रजनन के नियमों के तहत जन्म लेने वाला महज एक उत्पाद नहीं, बल्कि उसका अपना एक स्वर होता है जो उसके जन्मदाताओं से अलग एवं विशिष्ट होता है और इसी से उस 'बेबेलियन नोट' (Babelian note) की सृष्टि होती है जो किसी भी भाषा के विकास के मूल में होता है।" (J. Derrida पृ. 191; समीर अनु. से उद्धृत पृ. 72)

उत्तर-आधुनिकता ने अनुवाद को सृजनशीलता के साथ जोड़ दिया है। इसके कारण अनुवाद कार्य में भी अब मूल जैसे भाव-भाषा प्रवाह की अपेक्षा की जा रही है। अब इस बात पर और भी अधिक बल दिया जा रहा है कि अनूदित रचना अनुवाद जैसी न लगे, वरन मूल रचना जैसा ही आस्वाद कराए। इसके लिए स्रोत भाषा के स्थान पर लक्ष्य भाषा के प्रति अधिक झुकाव अपेक्षित है। अनुवाद के क्षेत्र में सृजनशीलता का यह आग्रह साहित्यिक रचना के प्रति तो रखा ही जा रहा है, साथ ही ज्ञान-विज्ञान के अनुवाद में भी सृजनशीलता (मौलिकता) का आग्रह किया जा रहा है।

कुल मिलाकर उत्तर-आधुनिकतावाद और विशेषतः देरिदा के विचार से अनुवाद व्यापक स्तर पर प्रभावित हुआ है। इससे अनुवाद की अवधारणा में तीन क्रांतिकारी परिवर्तन हुए :

- पहला, पाठ के अर्थ की संभावनाओं की तलाश करते हुए उसमें अनेकार्थ का उद्‌घाटन-विश्लेषण किया जाने लगा है।
- दूसरा, पाठ के अभिप्राय को महत्व देते हुए उसे एक भाषा से दूसरी भाषा में संचरित-संरक्षित करने पर बल दिया जा रहा है।
- तीसरा, पाठ को भाषा की परिधि से परे ले जाकर लेखन को नया जीवन प्रदान करना।

अनुवाद अब दो भाषा-संस्कृतियों के बीच संवाद करने वाला महत्वपूर्ण अनुशासन बनकर उभरा है।

देरिदा ने 'लिविंग ऑन बॉर्डर लाइन' में अनुवाद-कार्य को प्रभावित करने वाले कारकों पर गहन विचार किया है। देरिदा ने 'Living On : Border Lines', 'What Is a "Relevant" Translation?' और 'Letter to a Japanese Friend' जैसे लेखों में अनुवाद गहन चिंतन-मनन किया है। पाठ को ग्रहण करते समय अर्थ-भेद या अर्थ-विचलन करने वाले भाषिक, सांस्कृतिक और कभी न समाप्त होने वाले विविध संदर्भों का विवेचन-विश्लेषण किया है। इनका अध्ययन अनुवाद में संप्रेषण की समस्याओं की समझ बढ़ाने में महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। यहाँ देरिदा द्वारा प्रस्तुत किए गए ऐसे ही कुछ इन मुद्दों का अध्ययन किया जा रहा है :

4.1.2.1 Living on border line वाक्य अथवा उपवाक्य का रचना, क्रम, शब्दकोश एवं संदर्भगत अर्थ-वैविध्य

देरिदा But who's talking 'about living'? अथवा 'On living'? (कौन लिविंग (जीने) के बारे में बात कर रहा है अथवा कौन लिविंग पर बात कर रहा है?) से अपनी बात शुरू करते हुए 'about living' और 'On living' को एक माना जाए या अलग यह प्रश्न उठाते हैं। फिर वह कहते हैं कि दूसरा पहले का 'अर्थात्' नहीं है। क्योंकि 'अर्थात्' से तात्पर्य है, बात को साबित करने के लिए सार्थक आधार देना, कथन के अर्थ को सीमित करना, किंतु यहाँ इन दोनों वाक्यों का यह अर्थ नहीं होता है। तो फिर इनसे और क्या निकलता है? एक तो 'संदेह' निकलता है ('कौन' बात कर रहा है?)। दूसरा, 'बचने का' - अर्थ निकलता है। (मैं तो बात नहीं कर रहा/ रही हूँ)। (Living On : Border Lines पृ. 75-76) इस प्रकार who's talking 'about living'? के रचनागत एक से अधिक अर्थ हो जाते हैं - संदेह का अर्थ, बचने का अर्थ। इसके कारण जब भी पाठक / अनुवादक अर्थ ग्रहण करना चाहता है, तब हमेशा उसके अंदर संदेह बना रहता है कि कौन-सा अर्थ लिया जाए और / या जब इसका अनुवाद करना हो तब इनमें से किस अर्थ को प्राधान्य दिया जाए।

वाक्य में प्रयुक्त शब्दों का क्रम बदल जाने पर पाठ का अर्थ बदल जाता है। On living? को यदि एक उक्ति मान लिया जाए तो इसके कौन-कौन से अर्थ निकलते हैं? Living on कहने पर इसका अर्थ अलग हो जाता है और on living कहने पर भिन्न अर्थ द्योतित होता है। शब्दकोश की दृष्टि से देखा जाए तो on और above के कारण भी अर्थ भेद हो जाएगा है।

अंग्रेजी में "on", "of " आदि prepositions का उपयोग पाठ के अर्थ को व्यापक स्तर पर परिवर्तित कर देता है। इसी प्रकार "on" की जगह "over", "above" या "beyond" को उपयोग में लाने पर वाक्य का अर्थ परिवर्तित हो जाता है। (Living On : Border Lines पृ. 76) यहाँ तक कि भाषा में प्रत्येक वर्ण का जितना महत्व है उतना ही महत्व विराम-चिह्नों का है और उतना ही महत्व दो शब्दों के बीच में दिये गए स्पेस का भी है। स्पेस रखने या न रखने से भी अर्थ परिवर्तित हो जाता है। जैसे - "दवाई पीली है"। वाक्य में 'पीली' शब्द रंग का सूचक है पर यदि 'पीली' के बीच में स्पेस कर दी जाए जैसे- "दवा पी ली है"। तो यहाँ दवाई के 'पी लेने' का अर्थ निष्पन्न होता है। संगणक के आगमन के बाद मुद्रण में सटिकता आई है। इससे पूर्व हाथ से लिखित या टाइप-राईटर से मुद्रित पाठ में कुछ अधिक-कम स्पेस, चिह्न - दाग-धब्बे के रूप में आदि के रहने की संभावना बनी रहती थी और हो सकता है इस प्रकार की चीजों पर इसलिए कम ध्यान दिया जाता रहा हो, किंतु अब संगणक के युग में मुद्रित पाठ के हर चिह्न, स्पेस आदि सह-प्रयोजन रखे जाते हैं और उन सब का लेखक अभिप्रेत विशेष अर्थ हो सकता है जिसे पाठक अर्थ निर्धारण करते समय नजरंदाज नहीं कर सकता।

संक्षेप में पाठ में भाषा-संरचना के कारण अर्थ-वैविध्य सामने आता है। पाठ की विशिष्ट संरचना में ही शब्दकोशीय अर्थ कुछ अलग होता है, वाक्य की रचना, पदों के क्रम में जरा-सा बदलाव उस अर्थ को परिवर्तित कर देता है। पाठ को भाषा-संरचना,

संकेत चिह्न, संस्कृति, समाज, धर्म आदि भिन्न-भिन्न संदर्भ से देखने पर अर्थ के विविध आयाम खुल कर सामने आने लगते हैं। जब भाषा-संरचना और पाठ के विविध संदर्भों के कारण लेखन की प्रकृति ऐसी (अर्थ-वैविध्य प्रकट करने वाली) होती है तब अनुवादक पाठ का कोई एक अर्थ कैसे निश्चित कर सकता है, और मानो कोई एक अर्थ निश्चित कर भी लेता है तब भी उसकी अर्थ-छवियों के परिवर्तित होने की अनेक संभावनाएँ बनी रहती है।

4.1.2.2 भाषिक संस्कृति के संदर्भ में अर्थ का विचलन

देरिदा के अनुसार भाषिक संस्कृति के संदर्भों के कारण अर्थ का विचलन (skidding) होता है। भाषिक संस्कृति के संदर्भ में देरिदा की जिन बातों का समावेश हो सकता है उन्हें प्रायः उन्होंने अपने निबंध लिविंग ऑन बॉर्डर लाईन्स में कहा है। (Living On : Border Lines पृ. 77-85) भाषिक संरचना में आए संदर्भ चिह्नों के विषय में विस्तार देते हुए वे कहते हैं कि आखिरकार अनुवाद में हम अन्य भाषा की सीमा में ही नहीं जाते अपितु *अन्य की भाषा* में भी प्रवेश करते हैं। वह अन्य जो हमारी मातृभाषा नहीं है अतः हमसे अन्य है, इसीलिए भिन्न है।

अनुवाद इसलिए भी कठिन और जैसा कि देरिदा कहते हैं अन-अनुवादनीय हो जाता है क्योंकि सवाल यह है कि कौन कह (बोल) रहा है और केवल कौन बोल रहा है यही महत्वपूर्ण नहीं है अपितु किसके विषय में कह रहा है यह भी महत्वपूर्ण है।

बात यहीं तक नहीं है, पर यह भी एक प्रश्न है कि क्या जो बोल रहा है उसे बोलने का अधिकार है? यानी प्रश्न यह भी है कि लिखने के बरक्स जब बोलना महत्वपूर्ण हो जाता है तो कौन कह रहा है, किससे कह रहा है और जो कह रहा है उसे क्या कहने का अधिकार है - ये तीनों प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि भाषा केवल शब्द-समूहों या व्याकरणिक कोटियों तक सीमित नहीं रह जाती अपितु उसमें सबसे महत्वपूर्ण तो संदर्भ है। बिना संदर्भ के अर्थ निकालना असंभव है और संदर्भ

कभी भी पूर्ण या समाप्त नहीं होते।

इन संदर्भों का संबंध कुल संरचना से है जो राजनीतिक, सांस्कृतिक, सैद्धांतिक या संस्थानगत संदर्भों में प्रकट होती है। ये संरचनाएँ विरोध/विद्रोह के साथ जुड़ी हैं जो तंत्र के साथ भिड़ती दिखायी पड़ती हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकता के दलित तथा परिधि के अन्य साहित्य को देखा जा सकता है। प्रश्न यह है कि परिधि के साहित्य को कौन पढ़/ बोल/ कह रहा है और क्या उसे कहने का अधिकार है? दलित एवं अन्य परिधीय साहित्य का अनुवाद कौन कर रहा है - क्या उसी समूह का सदस्य या अन्य और क्या उसे अधिकार है - ये वे प्रश्न हैं जो उत्तर-आधुनिक विमर्श में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बन कर उभर रहे हैं।

उसी तरह बहु-भाषिकता (multilingual), द्वि-भाषिकता (bilingual) एवं एक-भाषिकता (diglossia) भी भाषिक संस्कृति की उपस्थिति का एक कारण है। यह भेद इस बात का भी संकेत करता है कि भाषा का अर्थ केवल शब्द भंडार और व्याकरणिक कोटियाँ नहीं अपितु भाषा का वह पूरा परिवेश जिसमें राजनीति, संस्कृति, इतिहास आदि का भी समावेश होता है।

एकभाषिकता के उदाहरण के रूप में इस उदाहरण को देखा जा सकता है। मेहमान के आगमन पर राजस्थान में 'पधारो' शब्द प्रयोग होता है। गुजराती में 'आवो' और हिन्दी में 'आइये' शब्द का प्रयोग होता है। इन तीनों शब्दों में मान-सम्मान तो है, लेकिन पधारो शब्द में राजस्थान की संस्कृति की जो विशिष्ट छाप दिखाई देती है वह गुजरात के 'आवो' और हिन्दी भाषी प्रदेश के 'आइये' में नहीं है। यह विशेष रूप से राजस्थान से जुड़े भू-भाग में ही दृष्टिगत होता है। द्वी-भाषिकता और बहु-भाषिकता के उदाहरण आगे की इकाइयों में दिये गए हैं।

4.1.2.3 पाठगत पूरकता बनाम अन्य पूरकता

देरिदा के अनुसार रचना (लेखन) का अर्थ दो बिंदुओं से प्रकट होता है। एक, पाठ की भाषा-संरचना से, जिसे पाठगत पूरकता कहा जा सकता है और इसमें केवल पाठ (टेक्स्ट) को लिया जाता है। पाठ को अर्थ-वैविध्य प्रदान करने वाले विभिन्न भाषा-संरचनागत तत्वों का अध्ययन आगे प्रस्तुत किया जा चुका है। दूसरा, पाठ में भाषा-संरचना के अलावा अन्य संदर्भ भी निहित रहते हैं जिसे अन्य पूरकता कहा जा सकता है। इसमें संस्कृति, समाज, धर्म, राजनीति आदि संदर्भों को लिया जाता है। भाषा अपने साथ सामाजिक-सांस्कृतिक आदि विशिष्टताओं का भी वहन करती है। पाठ में आने वाले इस प्रकार के विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक उस समाज-संस्कृति की जड़ों तक न पहुँचा जाए।

4.1.2.4 अर्थ-भेद या अर्थ-विचलन के संदर्भ

पाठ में अर्थ-भेद या अर्थ-विचलन जिन विभिन्न कारणों से होता है उसमें देरिदा संकेत चिह्न (quotation marks) को एक महत्वपूर्ण कारक मानता है। देरिदा अपनी बात को अवतरण चिह्न के उदाहरण द्वारा समझाता है कि संकेत चिह्न लगाएँ जाने पर किस तरह अर्थ बदल जाता है। अवतरण चिह्न लगाए जाने पर जो शब्द-युग्म बनता है वह विशिष्ट अर्थ देता है। यथा "living on", "on" living, "on" "living", on "living" का अर्थ एक दूसरे से भिन्न है। (Living On : Border Lines पृ. 76) इसी प्रकार पाठ में योजक-चिह्न लगाए जाने पर भी अर्थ-वैविध्य सामने आता है। देरिदा के अनुसार यह संकेत चिह्न (quotation marks) पाठ के अंदर भी मौजूद रहते हैं और तब यह सूची और भी बड़ी हो सकती है। (वहीं, पृ. 76) अर्थ-विचलन के यह संदर्भ अनुवादक के लिए अर्थ-ग्रहण करने में बाधा उत्पन्न करते हैं, जिससे अनुवाद कार्य प्रभावित होता है। living on का यह भी अर्थ है, वह भी है और वह भी हो सकता है। यह भाषा के स्तर पर है। जैसे सूरदास के पद "फाटक दै कर हाटक माँगत भोरै

निपट सु धारी।" (सूरदास पृ. 65) में 'फाटक' और 'हाटक' शब्दों के एकाधिक अर्थ हो सकते हैं। 'फाटक' शब्द मूल अर्थ है - अनाज फटकने से निकला कदन्न अथवा फटकन, लेकिन सूरदास ने इसे ज्ञान योग के रूप में प्रयुक्त किया है। 'हाटक' शब्द का अर्थ है - स्वर्ण, लेकिन सूरदास ने इसे प्रेम और भक्ति के अर्थ में प्रयुक्त किया है जो बहु-मूल्य है। इस प्रकार सूरदास के संदर्भ में इस पंक्ति का अर्थ यह है कि फटकन जैसी निस्सार वस्तु अर्थात् ज्ञान योग समर्थित निर्गुण ब्रह्म देकर बदले में हमसे (गोपियों से) स्वर्ण जैसा बहुमूल्य और प्रिय कृष्ण माँगता है।

4.1.2.5 अनुवाद कार्य में भाषागत संबद्धता (Alliance in the language)

भाषागत संबद्धता से तात्पर्य है भाषा के प्रति वचनबद्धता। वचनबद्धता वह होती है, जिसमें वचन दिया जाता है और वचन देने का अर्थ है, हमेशा दूसरे का ध्यान रखना। दूसरे पक्ष के अनुकूल होकर ही वचनबद्धता निभायी जा सकती है। उदाहरण के तौर पर शादी के रूपक को लिया जा सकता है, जहाँ दोनों व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति वचनबद्ध होते हैं। अनुवाद कार्य में यह वचनबद्धता लक्ष्य भाषा के प्रति होती है। जब अनुवादक स्रोत भाषा से दूसरी भाषा अर्थात लक्ष्य भाषा में अनुवाद कार्य करने के लिए प्रवृत्त होता है तब वह लक्ष्य भाषा से जुड़ते हुए उससे प्रतिबद्ध हो जाता है। उत्तर-आधुनिकता तक आने से पूर्व अनुवाद में स्रोत भाषा के सौंदर्य का अधिक ध्यान रखा जाता था। उदाहरण के लिए गुजराती के प्रसिद्ध रचनाकार उमाशंकर जोशी की रचनाओं का अनुवाद करते समय उनके पाठ का, वाक्यों का, शब्द-प्रयोगों का, अलंकारों का, यहाँ तक कि वाक्यगत जटिलताओं की भी सुरक्षा करने पर बल दिया जाता था। क्योंकि तब यह बताने की कोशिश की जाती थी कि उमाशंकर जोशी का लेखन इस प्रकार है। तब कवि अधिक महत्वपूर्ण था, इसलिए सारी वचनबद्धता कवि उमाशंकर जोशी के प्रति होती थी, किंतु उत्तर-आधुनिकता के आने के बाद अनुवादक की अधिकाधिक वचनबद्धता लक्ष्य भाषा के प्रति हो जाती है, क्योंकि अब रचनाकार

का अनुवाद करना चाहते हैं, उन्हें संप्रेषित करना चाहते हैं। अब सारा बल इस बात पर है कि क्या कहा गया है। जो कहा गया है वह भी संदेह के दायरे में आ जाता है क्योंकि अर्थ की अनंतता है। रचनाकार क्या कहना चाहता है, इस बात का महत्व इसलिए नहीं रहा क्योंकि दी ऑथर इज़ डेड। पर उसने जो कहा है क्या वह अनुवाद से संप्रेषित होता है या नहीं - यह मुख्य बात है।

संप्रेषण के इस मुद्दे को लेकर भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र एवं साहित्यकारों पर दृष्टि करें तो उत्तर-आधुनिकता के आने से पहले कोई विद्वान रचना को संप्रेषित करने की बात नहीं करता। सिर्फ आई. ए. रिचर्ड्स ही है, जो संप्रेषण पर व्यवस्थित रूप से विचार करता है। भारतीय काव्यशास्त्र में साधारणीकरण की प्रक्रिया के द्वारा भी सहृदय तक भावादि को संप्रेषित करने की बात की गई है।

इसी तरह उत्तर-आधुनिकता की ओर क्रमशः आने पर साहित्येतर पाठ भी उतना ही महत्वपूर्ण होता गया जितना साहित्यिक पाठ। साहित्येतर पाठ में ज्ञान है, साहित्येतर पाठ से जुड़ी सारी बंदिशें एक तरफ हो गई और मुख्य मुद्दा संप्रेषित किए जाने पर रहने लगा।

4.1.2.6 संदर्भ कभी भी समाप्त नहीं होते

देरिदा पाठ में भाषा की संरचना और उसमें निहित विविध संदर्भों की सोदाहरण चर्चा करते हुए यह प्रतिपादित करता है कि कोई भी पाठ अन-अनुवादनीय होता है। पाठ की अन-अनुवादनीयता का मुद्दा आधुनिक युग में भी उठाया गया था, किंतु आधुनिक युग में पाठ की अन-अनुवादनीयता इस अर्थ में थी कि स्रोत भाषा की सामग्री में प्रयुक्त शब्दों के समतुल्य शब्द लक्ष्य भाषा में उपलब्ध नहीं हो पाते थे। अर्थात् आधुनिक युग में पाठ की अन-अनुवादनीयता का मूल कारण समतुल्य शब्दों का अभाव माना जाता था। लेकिन देरिदा यह कहता है कि पाठ अथवा भाषा में ही कुछ ऐसा रहता है जो अन-अनुवादनीय है। यहाँ पर देरिदा भाषा की संरचना और

उसमें निहित संस्कृति, समाज आदि विविध संदर्भों की ओर संकेत करता है। देरिदा यह दिखाता है कि पाठ अथवा भाषा में थोड़े-से परिवर्तन से भी किस प्रकार अर्थ बदल जाता है अथवा पाठ को ग्रहण करते समय पाठक या अनुवादक का पाठ से लेकर ध्वनि तक या वाक्य में निहित स्पेस पर, कम या ज्यादा ध्यान देने से भी पाठगत नये संदर्भ सामने आते हैं और इसके साथ ही नये अर्थ भी प्रकट हो जाते हैं। देरिदा But who's talking about living? वाक्य के तीन अलग-अलग पदों (1. "Who", 2. "Talking about living" और 3. "Living") पर क्रमशः बलाघात देकर वाक्य के तीन भिन्न अर्थ प्रकट होने की बात प्रस्तुत करता है। (Living On : Border Lines पृ. 78) बलाघात से अर्थ-भेद की स्थिति का हिन्दी में भाषाविज्ञान के अंतर्गत अध्ययन किया जाता रहा है। जैसे - *हम,* भारतीय भाषा के बारे में क्या सोचते हैं? वाक्य में 'हम' पर बल देने की जगह 'भारतीय' पर बल देने से पूरा अर्थ बदल जाता है। जैसे - *हम भारतीय,* भाषा के बारे में क्या सोचते हैं? बलाघात के प्राचीन प्रमाण वैदिक युग में प्राप्त होते हैं। बलाघात एक संकल्पना के रूप में आधुनिक युग में प्रबल होता है। किंतु इसे अनुवाद के संदर्भ में लागू करने का काम संभवतः पहली बार देरिदा ने किया है

इस प्रकार अर्थ हमेशा बॉर्डर लाइन पर रहता है। किसी अन्य शब्द पर बल देते ही अर्थ बदल जाता है। कुल मिलाकर पाठ या भाषा में वे चीजें मौजूद रहती है जिससे हर बार पाठ में एक नया संदर्भ आता है। किसी भी पाठ की कोई सीमा नहीं होती, न भीतर (अर्थगत) होती है, न बाहर (संरचनागत); अर्थ की भी कोई सीमा नहीं है, संदर्भ की भी कोई सीमा नहीं है और इसीलिए पाठ हर बार एक नये संदर्भ के साथ अनूदित हो सकता है। अर्थात् कोई भी पाठ कभी भी अंतिम नहीं होता।

4.2 बाज़ार और अनुवाद

बीसवीं शती के नौवें दशक में भारत में नई आर्थिक नीति लागू होने के कारण

विश्व के अन्य देशों के साथ भारत में भी उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण का आगमन हुआ। इससे बाज़ार व्यापक स्तर पर प्रभावित हुआ तथा बाज़ार का उपभोक्ता के साथ रिश्ता पूरी तरह बदल गया। उपभोक्ता तक उत्पाद और सेवा को पहुँचाने का काम सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा होने लगा। इस प्रकार बाज़ार प्रणाली में व्यापक परिवर्तन आया। अध्याय एक में भूमंडलीकरण एवं बाज़ारवाद और अध्याय तीन में सूचना प्रौद्योगिकी एवं सूचना-क्रांति से संबंधित अध्ययन किया गया है। अतः यहाँ बाज़ार के अनुवाद से जुड़े प्रमुख मुद्दों का अध्ययन किया जा रहा है।

भूमंडलीकरण उत्तर-आधुनिक अवधारणा है। इसका सीधा संबंध अमरीका से है। प्रौद्योगिकी के विकास का लाभ उठाकर अमरीकी कंपनियों ने उत्पादन की मात्रा काफी हद तक बढ़ा दी। किंतु इन उत्पादों के लिए खरीददार का अभाव होने लगा। इससे अमरीका में माँग और आपूर्ति का संतुलन गड़बड़ा गया और बाज़ार मंदी की चपेट में आने लगा। तब अमरीकी उत्पाद की विश्व-बाज़ार में बिना रोक-टोक बिक्री करने के लिए अमरीका ने मशक्कत शुरू की। नब्बे के दशक में भूमंडलीकरण को व्यापक समर्थन मिलने लगा और विश्व व्यापार संगठन की रचना हुई। आज विश्व के प्रायः सभी देश इस संगठन के सदस्य हैं। इसके तहत विश्व के विभिन्न देश के उत्पाद और सेवा की बिना रोक-टोक किसी भी देश में खरीद-फरोख्त करना संभव हो गया है। इस प्रकार भूमंडलीकरण विश्व के प्रायः सभी देशों तक पहुँच चुका है और इसके साथ ही अमरीकी उत्पाद और संस्कृति भी।

भूमंडलीकरण के चलते देशी कंपनियाँ रातों-रात बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बन गई है। छोटी-छोटी कंपनियाँ भी विश्व-बाज़ार में उत्पाद बेचकर बहुराष्ट्रीय कंपनी का रूप ले रही है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने विश्व-व्यापी उत्पाद लेकर भारतीय बाज़ार में प्रवेश कर चुकी है। इससे भारतीय जन मानस गहराई से प्रभावित हुआ है। विश्व-स्तरीय इच्छित उत्पाद को प्राप्त करने के लिए यत्नशील पीढ़ी में अभूतपूर्व शक्ति और

साहसिकता के दर्शन होते हैं, वहीं दूसरी तरफ उत्पादों के आकर्षक विज्ञापनों के चलते युवा पीढ़ी में खाओ, पीओ और मौज करो की वृत्ति भी नजर आती है।

भूमंडलीकरण ने बाज़ार और प्रौद्योगिकी के माध्यम से मानव जीवन को नियंत्रित करना शुरू कर दिया। इन कंपनियों का मूल उद्देश्य है मुनाफा कमाना। मुनाफा कमाने के लिए उत्पाद बेचना अनिवार्य है। उत्तर-आधुनिक समय में कंपनियाँ व्यक्ति के जीवन की आवश्यकताओं को नियंत्रित करती है। अब बाज़ार और विज्ञापन लोगों में उत्पाद खरीदने की कृत्रिम आवश्यकता पैदा करते हैं।

आज की सर्वव्यापी बाज़ार-व्यवस्था के साथ वे सब जुड़ सकते हैं जिनके पास बेचने के लिए उत्पाद और सेवा है या जिसके पास खरीदने के लिए धन है। बाज़ार की गलाकाट प्रतिस्पर्धा में वही विक्रेता टीक सकता है जिसके पास बेहतर उत्पाद और सेवा है। बाज़ार उसे मुँहमांगी कीमत भी देने को तैयार है। सूचना क्रांति ने ग्राहक को और अधिक स्वतंत्रता प्रदान की है। आज ग्राहक बाज़ार में उपलब्ध विविध प्रकार के उत्पाद में से कहीं से भी किसी भी उत्पाद को खरीद सकता है। ग्राहक के पास धन की कमी की सीमा को भी उधार देने वाली बैंकों और वित्तीय कंपनियों ने सीमित कर दिया है। महानगरों से लेकर सुदूर छोटे कस्बों में बिछे बाज़ार और बैंकों के जाल ने बड़े उद्यमियों से लेकर छोटे उद्यमी तथा किसान, कारीगर, मजदूरों तक को गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। बाज़ार की यह पहुँच भारतीय संस्कृति को भी प्रभावित कर रही है।

बाज़ार पर भारतीय समाज-संस्कृति के प्रभाव को नूडल्स - 'मैगी' के विज्ञापन में देखा जा सकता है। पहले यह विज्ञापन शहरी मध्य-वर्ग की माँ को केन्द्र में रखकर बनाया गया था, जो अपने बच्चों को तुरंत मैगी बनाकर डाईनिंग टेबल पर खिलाती है। किंतु इसका नया विज्ञापन गाँव के परिवार के बालक को केन्द्र में रखकर बनाया गया है, जो स्वयं मैगी लेकर आता है और ज़मीन पर बैठकर अपने साथ अपनी माँ

को भी खिलाता है।

भारत जैसे बहुभाषी देश में यह सब तभी संभव हो सकता है जब देश की विभिन्न भाषा, क्षेत्र और रुचि के लोगों को लक्ष्य में रखकर विक्रय की व्यवस्था की जाए। क्योंकि कोई भी आगत भाषा किसी भी भारतीय की चेतना को इस सीमा तक प्रभावित नहीं कर सकती कि वह अपनी जीवन पद्धतियों को किसी भी आगत भाषा के आधार पर निर्धारित करने लगे। ग्राहक के संवेदनात्मक धरातल को छूए बिना न तो किसी उत्पाद का विपणन किया जा सकता है और न ही उसका विज्ञापन। इसीलिए बाज़ारवाद की यह सारी अभिव्यक्तियाँ देश के सबसे ज्यादा लोगों द्वारा बोली-समझी जाने वाली हिन्दी भाषा में हो रही है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में विज्ञापन की प्रमुख भाषा - हिन्दी का विस्तार दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। ऐसे में विदेशी कंपनियाँ धन कमाने के लिए चाहती है कि उनके प्रबंधक भारत के उपभोक्ता, भारतीय संस्कृति और समग्र भारतीय जन मानस को अच्छी तरह जाने-समझे ताकि छोटे-बड़े उत्पाद की अधिकाधिक खपत की जा सके, ज्यादा मुनाफा प्राप्त किया जा सके। यह सब संभव है असरदार विपणन और मोहित एवं लालायित करने वाले विज्ञापनों के द्वारा। कंसल्टैंसी फ़र्म इनकी प्रभाव क्षमता को बढ़ाने का काम करता है। सूचना-क्रांति इसे देश के कोने-कोने तक पहुँचाने का काम करती है। यद्यपि कंपनियों के विदेश व्यवहार और आंतरिक व्यवहार की प्रमुख भाषा हिन्दी न होकर अंग्रेजी या उनकी अपनी विदेशी भाषा है। जबकि भारत में उत्पाद को उपभोक्ता तक पहुँचाने का प्रमुख माध्यम है हिन्दी भाषा। इस प्रकार भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद के चलते भाषा अचानक केन्द्र में आ जाती है। भारत के संदर्भ में यह भाषा हिन्दी है। आज ऐसी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ न सिर्फ भारत, किंतु भारत के आस-पास के देश, जहाँ हिन्दी बोली जाती है वहाँ भी हिन्दी के माध्यम से ही अपने उत्पाद और ब्रांड का विपणन, विज्ञापन और बिक्री करती है। इसे साकार करने में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका

रही है।

यद्यपि उत्तर-आधुनिक अवधारणाओं के प्रभाव स्वरूप भाषा के साथ भी उपयोगितावादी और उपभोक्तावादी व्यवहार हो रहा है। आज अंग्रेजी भाषा सूचना और आर्थिक गतिविधियों का केन्द्र बन चुकी है और क्षेत्रीय भाषाएँ धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। हालाँकि विश्व का एक बड़ा उपभोक्ता वर्ग भारत में होने के कारण हिन्दी को इस समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। स्वभाव से सर्वग्राही और जनता की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने वाली हिन्दी भाषा का इस दौर में भी विकास हो रहा है। भारत में आपसी मेलजोल, बाज़ार और संचार माध्यमों की प्रमुख भाषा हिन्दी है। सूचना प्रौद्योगिकी के इस दौर में कम्प्यूटर में हिन्दी शब्दकोश से लेकर हिन्दी सिखाने तक के विविध प्रकार के सॉफ्टवेर उपलब्ध करवाए जा रहे हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी से प्राप्त लाभ की सामाजिक पहुँच स्थापित करने की भाषा निश्चित रूप से हिन्दी ही हो सकती है। इसे अनुवाद के माध्यम से ही संभव किया जा सकता है।

बाज़ार में उत्पाद की अधिकाधिक खपत के लिए विज्ञापन का व्यापक स्तर पर उपयोग किया जाता है। विज्ञापन संचार का एक साधन है। विज्ञापन का मूल काम है जन-मानस तक उत्पाद या सेवा की सूचना संप्रेषित करना। किंतु आज इसकी भूमिका बदल गई है। अब विज्ञापन लोगों तक सूचना संप्रेषित करने का माध्यम मात्र न रहकर आर्थिक गतिविधियों का केन्द्र बन गए हैं। बाज़ारवाद में कंपनियाँ अपने उत्पाद-सेवाओं को उपभोक्ता तक पहुँचाने के लिए विज्ञापन को एक हथियार के रूप में उपयोग में लाती हैं। अब विज्ञापन किसी उत्पाद की विशेषता बताने से ज्यादा व्यक्ति की सामाजिक हैसियत बताते हैं। विज्ञापन की प्रभाव क्षमता बढ़ाने के लिए व्यापारिक रणनीति के तहत उपभोक्ता वर्ग की आवश्यकताओं का सर्वेक्षण करवाया जाता है। इससे प्राप्त परिणाम के आधार पर विज्ञापन एजेंसियाँ निर्णय करती कि विज्ञापन में क्या होना चाहिए, कैसे होना चाहिए, भाषा कैसी होनी चाहिए और उसे

किस माध्यम से कौन-सी जगह पर होना चाहिए। आज बाज़ार और विज्ञापन भी देश के सुदूर क्षेत्र में बस रहे उपभोक्ता तक पहुँच गए हैं। विश्व स्तर पर जैसे-जैसे मध्यवर्गी उपभोक्ता समाज का विस्तार हो रहा है वैसे-वैसे अंग्रेजी भाषा का एकाधिकार समाप्त होता जा रहा है साथ ही स्थानीय भाषाओं का महत्व बढ़ता जा रहा है।

इस प्रकार विज्ञापन उपभोक्ता केन्द्रित होते हैं जिसमें भाषा का पहलू महत्वपूर्ण है। विदेश व्यापार एवं कंपनियों के आंतरिक व्यवहार की भाषा अंग्रेजी हो सकती है। कंसल्टैंसी फर्म और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विज्ञापन की रचना भी अंग्रेजी में या अपनी भाषा में करते हैं। लेकिन विज्ञापन लक्षित उपभोक्ता वर्ग की भाषा में ही बनाकर बाज़ार में उतारे जाते हैं। बहुभाषी भारत के बाज़ार की प्रमुख भाषा निश्चित रूप से हिन्दी है। और यह सारा काम अनुवाद के माध्यम से ही संभव है।

बाज़ार में जब किसी उत्पाद का विज्ञापन किया जाता है तब उसके संदेश का प्रत्यक्ष और परोक्ष, दो रूप में संप्रेषण होता है। जैसे पहले के विज्ञापनों में प्रस्तुत किए जा रहे उत्पाद को स्पष्टतः श्रेष्ठ कहते हुए उसे खरीदने की अपील की जाती थी। लेकिन आज ऐसा नहीं हैं। कोई उत्पाद श्रेष्ठ है ऐसा विज्ञापन में अब स्पष्ट रूप से नहीं कहा जाता, फिर भी विज्ञापन में उत्पाद की जो अपील की जाती है वह अब परोक्ष रूप से उस उत्पाद को श्रेष्ठ बताने का काम करती है। इतना ही नहीं अब बाज़ार में सहभागिता को अपनाया जा रहा है जो दो भिन्न उत्पाद साथ में व्यापार करते दिखाई देते हैं, जैसे किसी टूथपेस्ट के साथ कोई और कंपनी क्रिम मुफ्त देना आदि। इसमें अप्रत्यक्ष रूप से क्रिम के संदेश को भी संप्रेषित किया गया है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारतीय ग्राहक को आकर्षित करने के लिए उत्पाद की मार्गदर्शक पुस्तिकाएँ हिन्दी में अनूदित करके प्रस्तुत कर रही हैं। उदाहरण रूप टेली-कम्यूनिकेशन बाज़ार के विस्तार से भारत में सेल फोन की खपत उल्लेखनीय स्तर

पर बढ़ गई है। ऐसे में विन्डो द्वारा अधिग्रहित नोकीया, सैमसंग, सोनी आदि सेल फोन की कंपनियों ने हिन्दी में अनूदित मार्गदर्शक पुस्तिकाएँ प्रस्तुत की हैं। भारत में फिल्म का बाज़ार बहुत बड़ा है। इसे ध्यान में रखकर होलीवुड की अधिकांश फिल्मों को हिन्दी में 'डब' करके प्रस्तुत किया जाता है। जेम्स बोंड पर आधारित फिल्में, जुरासिक पार्क, टाइटेनिक, मैट्रिक्स, टर्मिनेटर आदि फिल्में (फिल्मों की शृंखला) हिन्दी में 'डब' करके फिल्म निर्माताओं ने भारतीय बाज़ार से रेकॉर्ड-ब्रेक मुनाफा कमाया है। टेलीविजन में नेशनल ज्योग्राफी, डिस्कवरी, सी एन एन जैसे चैनल बाज़ार की माँग को ध्यान में रखते हुए कई कार्यक्रम हिन्दी में अनूदित करके प्रस्तुत कर रहे हैं। वहीं छोटे बच्चों की पसंदीदा पोगो, कार्टून नेटवर्क जैसी पूरी चैनल को हिन्दी में सुनने का विकल्प उपलब्ध करवाया जा रहा है। इस प्रकार वर्तमान समय में टेलीविजन पर अनेक कार्यक्रम अनूदित करके प्रस्तुत किए जा रहे हैं। इनके अनुवाद में अंग्रेजी और हिन्दी भाषा की प्रकृति भिन्न होने के कारण कभी भाषा की संरचना तो कभी सहजता एवं गतिशीलता का अभाव संप्रेषण में अवरोध पैदा करते हैं। यही कारण है कि ज्ञान और अनुभव की कमी के कारण, मूल पाठ की अभिव्यक्ति में असावधानी रह जाने कारण, ज्ञान के साहित्य का हिन्दी अनुवाद कई बार कृत्रिम लगने लगता है। मौलिकता के अभाव में मूल पाठ अनुवाद में संप्रेषित नहीं हो पाता है। मनोरंजन और आनंद प्राप्ति में व्यवधान आ जाता है। कई बार बाज़ार से जुड़े अनुवाद के ऐसे विविध आयामों का मुख्य उद्देश्य ज्ञान के साहित्य को संबंधित लक्षित समूह तक पहुँचना भर होता है, यह अनुवाद सामान्य जनता के लिए अटपटे-से होते हैं। भारत में कार्यालयों में होनेवाले अनुवाद प्रायः इसी का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

वैसे बाज़ार को ध्यान में रखकर किए जाने वाले अनुवाद में संप्रेषणीयता पर विशेष बल दिया जाता है। और इसीलिए ये अनुवाद लक्षित समूह को संवेदनात्मक धरातल पर छू जाने में समर्थ भी होते हैं। यही कारण है कि विज्ञापन, फिल्म आदि

के अनुवाद में मौलिकता और रचनात्मकता का गुण दृष्टिगत होता है। इस संदर्भ में उदाहरण के रूप में गाँधी, टाइटैनिक जैसी फिल्मों को देखा जा सकता है :

- The object of this massive tribute died as he had always lived : A private man without wealth, without property, without official title or office.

  जिस महान संत को हमारी श्रद्धांजलि अर्पित है, सदा ही वह सादगी से जिया, अपार्थिव मानव, न कोई घर-कर, न प्रपंच, न कोई पदवी थी, न कोई ओहदा था।

- When I despair I remember that all through history the way of truth and love has always won. There have been tyrants and murderers and for a time, they can seem invincible but in the end, they always fall.

  निराशा ने जब भी घेरा, तो बार-बार इतिहास साक्षी हुआ कि ज्ञान और सत्य की ही सदा विजय हुई। इस धरती पर बहुत सारे हत्यारे और सितमगर हुए और कभी-कभार ऐसा लगा कि विजय उन्हें ही मिलेगी, पर आखिर यही हुआ कि वह मिट गए।

- Titanic was called the ship of dream and it was.

  टाइटैनिक सपनों का जहाज कहा जाता था और वह था भी सपनों का जहाज।

- Titanic will tumble. That she will. That is mathematical certainty.

  जहाज डूबेगा जरूर। यह गणित की सच्चाई है।

भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद को साकार करने में संचार प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। आज का युग सूचना-क्रांति का युग है। ऐसे में सभी देशों का यह एक बड़ा दायित्व बन जाता है कि वह जनता तक सूचनाएँ पहुँचाने के लिए जागरूक रहें, वरना वह देश एवं जनता अन्य से पिछड़ जाएंगे। अब आवश्यकता इस बात की है कि सभी देश अपनी-अपनी भाषा में सूचना-संजाल का निर्माण करें, ताकि जनता सरलता से सूचना-क्रांति का लाभ उठा सके। यह काम अनुवाद के माध्यम से

ही किया जा सकता है। सूचना क्रांति से सूचना का संसार दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा है और मनुष्य द्वारा इतनी विपुल मात्रा में उपलब्ध सामग्री का अनुवाद करने में ऊर्जा, समय और धन का व्यय हो रहा है। ऐसे में सूचना-क्रांति के लाभ को उठाने के लिए प्रत्येक देश को इस बात की आवश्यकता है कि वह अपनी-अपनी भाषा में मशीन-अनुवाद का विकास करें।

भारत में साहित्य के अलावा वाणिज्य, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, न्याय और शोध की भाषा मुख्य रूप से अंग्रेजी है। कंप्यूटर और इंटरनेट के जानकार अंग्रेजी में ही अपना काम कर लेते हैं। इस कारण हिन्दी में बौद्धिक कार्य से जुड़ी सामग्री का बेहद अभाव है। ज्ञान का सामाजिक रूपांतरण तभी संभव हो सकता है जब उसे देश की भाषा में लाया जाए। इस लिए भारत के संदर्भ में मशीन-अनुवाद और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। इसे सफल बनाने वाली प्रमुख भाषा हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ हो सकती है।

मशीन-अनुवाद को साकार करने के लिए विश्व एवं भारतीय स्तर पर महत्वपूर्ण प्रयास हो रहे हैं। गूगल ट्रांसलेट हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ विश्व की लगभग 90 भाषाओं में मशीन-अनुवाद उपलब्ध करवाता है। भारत में राजभाषा विभाग सी-डेक के सहयोग से मशीन-अनुवाद को सफल बनाने के लिए संशोधन कर रहा है। भारत के अलग-अलग राज्यों की सरकारों द्वारा अपनी भाषा में मशीन-अनुवाद संभव बनाने के प्रयास हो रहे हैं। मंत्रा, मंत्रा राजभाषा, आंग्ल भारती, अनुसारक, शिवा एवं शक्ति, युनिवर्सल नेटवर्किंग लैंग्वेज (UNL) हिन्दी स्पेल चेक आदि मशीन-अनुवाद के क्षेत्र में विकसित सॉफ्टवेर इन्हीं प्रयासों की उपलब्धियाँ हैं।

मशीन-अनुवाद कृत्रिम बुद्धि पर आधारित होता है। यह बुद्धि भाषा के नियमों से संचालित रहती है। मनुष्य अनुवाद करते हुए अनुभव से परिष्कृत होता है। यदि मशीन में भी अनुभव से परिष्कृत होने की क्षमता विकसित कर ली जाये, जो कि

असंभव है, तो अच्छा अनुवाद प्राप्त किया जा सकता है। हर्ष की बात यह है कि गूगल ट्रांसलेट, मंत्रा जैसे मशीन-अनुवादक इसी पद्धति पर विकसित किए जा रहे हैं। अतः भविष्य में और अच्छे मशीन-अनुवाद प्राप्त होने की प्रबल संभावनाएँ है। फिर भी साहित्य आदि की भाषा में मनुष्य की जो संवेदनाएँ और अनुभूतियाँ निहित रहती है उसका सफल कोड-निर्धारण करना आज मशीन-अनुवाद की सबसे बड़ी सीमा बनी हुई है। इसीलिए मशीन-अनुवाद में शत प्रतिशत शुद्धता का दावा कभी नहीं किया जा सकता।

उत्तर-आधुनिकता में बाज़ार से जुड़ी अवधारणाओं के चलते अनुवाद महत्वपूर्ण केन्द्र बिंदु बनकर उभरा है। श्रीनारयण समीर इसकी अनिवार्यता को इन शब्दों में उजागर करते हैं, "भूमंडलीकरण बाज़ारवाद और सूचनाक्रांति के इस उत्तर-आधुनिक दौर में अनुवाद एक ऐसी सच्चाई बनकर उभरा है कि अब हर कोई मानने लगा है कि अनुवाद के बीना काम नहीं चलेगा।" (समीर भूमिका से)

कुल मिलाकर भारत में नई आर्थिक नीति लागू होने के बाद बाज़ार कई नये आयाम खोलते हुए उपभोक्ता के घर तक पहुँच चुका है। वैश्विक स्तर पर भूमंडलीकरण से जो उपभोक्ता केन्द्रित विचार का निर्माण हुआ उसने बाज़ार को केन्द्रीय स्थान प्रदान किया है। आज की बाज़ार केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था का सारा व्यवहार मांग और आपूर्ति पर निर्भर है तब उपभोक्ता की मांग को बढ़ाना अनिवार्य हो चला है। अब उत्पाद की सूचना उपभोक्ता तक पहुँचाने मात्र से काम नहीं चल सकता, उपभोक्ता को चीजें खरीदने के लिए लुभाना, उसकी जरूरतों को समझना और उसके संतोष को प्राधान्य देना अनिवार्य हो चला है। यह कार्य संचार प्रौद्योगिकी-जनित सूचना-क्रांति तथा अनुवाद के द्वारा बखूबी निभाया जा रहा है। बाज़ार के प्रमुख घटक-आधार बन चुके भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद और सूचना-क्रांति ने विश्व भर के देशों की राजनीति, अर्थव्यवस्था, सामरिक और सामाजिक नीतियों को गहराई से

प्रभावित किया है। इससे अनुवाद के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन आया और बाज़ार से जुड़े विज्ञापन आदि के अनुवाद में संप्रेषण की समस्याओं का स्वरूप भी बदला है। वहीं बाज़ार से जुड़ी अवधारणाओं को साकार करने में अनुवाद ने महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई है।

4.3 संस्कृति और अनुवाद

संस्कृति की अवधारणा, संस्कृति के विभिन्न स्वरूप, संस्कृति की बहु-संस्कृति तक की यात्रा और संस्कृति पर उत्तर-आधुनिक प्रभाव, समुदाय और संस्कृति आदि का विस्तृत अध्ययन अध्याय एक के संस्कृति : बहु-संस्कृति शीर्षक के अंतर्गत किया जा चुका है। अतः उन मुद्दों की पुनः चर्चा न करते हुए यहाँ सीधे अनुवाद के संदर्भ में संस्कृति का अध्ययन किया जा रहा है।

इक्कीसवीं सदी को ज्ञान की सदी कहा जाता है। इस ज्ञान की सदी में वही लोग टिक सकते है जो निरंतर परिवर्तित-परिवर्धित हो रहे हैं अपने युग को समझने की कोशिश करते रहे हैं। साहित्य के क्षेत्र में नये साहित्य और सिद्धांतों का निर्माण हो रहा है। उत्तर-आधुनिकता ने परिधीय समुदाय को अपनी पहचान बनाने की, अभिव्यक्त होने की जगह दी है। समुदाय विशेष से जुड़े लोग साहित्य के माध्यम से अपने जीवन के अनुभव, संवेदना, संघर्ष, विचार, अपने समाज और संस्कृति को अभिव्यक्त कर रहे हैं। इन समुदाय की साहित्यिक अभिव्यक्ति को उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक एवं बहुसांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण काम अनुवाद के द्वारा ही संभव है।

अनुवाद में स्रोत भाषा की पाठ-सामग्री को लक्ष्य भाषा में पुनः सृजित किया जाता है। अब इस बात को सभी स्वीकार करते हैं कि भाषा अपने साथ सांस्कृतिक-सामाजिक अर्थ-छवियों का वहन करती है। जैसी कि आगे चर्चा की गयी है कि संस्कृति परंपरा, धर्म, पारिवारिक-सामाजिक वैशिष्ठ्य, कला, मनोरंजन, जीवन शैलियाँ

जैसे अनेक तत्वों से निर्मित होती है। इन तत्वों की विशिष्टता ही प्रत्येक संस्कृति को एक-दूसरे से अलग करती है। इनसे जुड़े हुए शब्दों के अर्थ भी विशिष्ट होते हैं जिसके समतुल्य दूसरी भाषा-संस्कृति के शब्दों से प्रायः निष्पन्न नहीं किए जा सकते। अतः सांस्कृतिक अर्थ-छवियों का अनुवाद करना सदैव दुष्कर कार्य रहा है।

उत्तर-आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण परिणति बहु-संस्कृति है। बहु-संस्कृति को अपनाने वाला पहला देश कनाडा था। कनाडा जैसे देशों ने अपने विकास के लिए बहु-संस्कृति को राजनीतिक स्तर पर स्वीकार किया है। ऐसे कम जनसंख्या वाले देशों ने अपने देश के विकास के लिए, अपनी जनसंख्या को बढ़ाने के लिए राजनीतिक रूप से कुछ ऐसी सुविधाएँ प्रदान की जिससे अन्य देश के लोग वहाँ आकर बसने के लिए आकर्षित हुए। इससे भिन्न-भिन्न देश से आकर बसने वाले लोग अपने साथ अपनी संस्कृति को भी लेकर आए। कनाडा, ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में विभिन्न संस्कृतियों से संबंध रखने वाले लोग न केवल एक ही स्थान पर आ बसे वरन् वे दिन-प्रतिदिन एक दूसरे से संपर्क में रहने लगे, परस्पर एक दूसरे से प्रभावित होने लगे। जैसे कि आगे कहा गया है कि बहु-संस्कृति में भिन्न-भिन्न संस्कृतियों से संबद्ध लोग अपने समुदाय, अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाकर रखते है और उसे अपने तौर-तरीकों से अभिव्यक्त भी करते हैं। ऐसे वातावरण में जब विभिन्न देश से आ बसे, अलग-अलग भाषा, धर्म, समाज एवं संस्कृति को प्रस्तुत करने वाले लोगों के बीच तादात्म्य स्थापित करने की जो बात उपस्थित होती है उसमें अनुवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दो व्यक्ति के बीच भाषा के अवरोध को तोड़ते हुए एक-दूसरे की संस्कृति परंपरा, धर्म, पारिवारिक-सामाजिक वैशिष्ट्य, कला, मनोरंजन, जीवन शैलियाँ आदि से परिचित करवाता है। इस प्रकार अनुवाद ही वह माध्यम है जो बहु-संस्कृति को सफल बना सकता है और कनाडा, ऑस्ट्रेलिया जैसे देश विकास कर सकते हैं।

समुदाय की पहचान बनाने में संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका है। किसी भी

समुदाय की पहचान तभी चिरकालीन बन सकती है जब उसके इतिहास के सबल पक्ष, सांस्कृतिक विशिष्टता, सांस्कृतिक मिथक आदि को प्रकाश में लाया जाता है। इसके अभाव में संघर्ष करके समुदाय अपने अधिकार प्राप्त कर सकता है लेकिन उसकी पहचान समय की रेख पर धुंधली पड़ जाती है। इस बात को बुरका के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। आधुनिकता के आने पर जिस बुरके को पिछड़ेपन और धार्मिक कठमुल्लापन का प्रतीक मानकर मुसलिम स्त्रियों ने उतार फेंका था वही बुरका उत्तर-आधुनिक युग में नये संदर्भ के साथ महत्वपूर्ण हो जाता है। अब बहु-संस्कृति प्रधान देश कनाडा आदि में बुरका मुसलिम स्त्रियों के लिए अपनी धार्मिक-सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक बन गया है, जिसे वे किसी के दबाव से नहीं वरन् अपनी इच्छा से धारण करती हैं और अपनी पहचान प्रदर्शित करती हैं।

पोशाक के संदर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि व्यक्ति जिस भौगोलिक वातावरण में है, उसके अनुकूल परिधान धारण करना पड़ता है, ताकि उस भौगोलिक वातावरण से शारीरिक अनुकूलन स्थापित किया जा सके। ऐसे में स्थान विशेष के सामान्य परिधान के अलावा सिर्फ सांस्कृतिक चिह्न ही है जिससे व्यक्ति अपनी विशिष्ट पहचान प्रदर्शित कर सकता है। इससे यह पता लगाया जा सकता है कि कौन आपके जैसा है। इससे यह फायदा होता है कि एक ही समाज और संस्कृति से जुड़े लोग मिलकर समूह बना सकते हैं, जैसे भारतीय समूह, चीनी समूह आदि।

इसके साथ यहाँ यह भी देखा जा सकता है कि किस प्रकार बहु-संस्कृति के संदर्भ से बुरके का अर्थ बदल गया है। शब्द वस्तुतः संकेत है, जिसमें अर्थ की अनेकता है, वैसे ही बुरका भी संकेत है और उसका अर्थ भी संदर्भ के अनुसार बदल जाता है। साथ ही पहले सिर्फ काले बुरके पहने जाते थे, अब विभिन्न रंग के बुरके भी पहने जाते हैं, जो स्त्री के मिज़ाज की भी अभिव्यक्ति देते हैं।

उत्तर-आधुनिकता ने समुदाय की पहचान को महत्व दिया है। जो लोग अब तक

परिधि पर थे उन्हें अभिव्यक्त होने, अपनी अलग पहचान बनाने की जगह दी है। विश्व भर में लंबे युग-काल से परिधि पर रहे ऐसे अनेक समुदाय आज अपनी पहचान स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है। विश्व स्तर पर अस्तित्व में आए स्त्री, दलित, आदिवासी, समलैंगिक, ब्लैक आदि ऐसे ही समुदाय है जो विभिन्न आंदोलन और साहित्य के माध्यम से मुख्य धारा में प्रवेश कर के अपनी पहचान स्थापित कर रहे हैं। इनमें से स्त्री, समलैंगिक, आदिवासी जैसे समुदाय विश्व के प्रायः हर कोने में मिल जाएंगे। जैसे कि सब जानते हैं विश्व की आधी आबादी स्त्री समुदाय की है और प्रायः प्रत्येक देश में आदिवासी समूह होता है। अतः इनसे जुड़ी समस्याओं, सुविधाओं, अधिकारों आदि की सामान्य समझ प्रबुद्ध वर्ग को प्राप्त होना सहज है। इनके संघर्ष की गाथा और साहित्य विश्व की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद के द्वारा उपलब्ध हो रहा है। जिससे गहन स्तर पर अवगत हुआ जा सकता है। उदाहरण रूप विश्व के विभिन्न स्थानों पर नारीवादी आंदोलन किए गए और उसकी विविध लहरों ने पूरे विश्व को प्रभावित किया, जिसके पीछे अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

लेकिन कुछ समुदाय ऐसे है जिनका संबंध निश्चित भू-भाग (देश) से है। विश्व स्तर पर ब्लैक समुदाय और भारतीय परिप्रेक्ष्य में दलित समुदाय ऐसे ही समुदाय है। विशिष्ट भू-भाग पर बसने वाले ब्लैक समुदाय से भारतीय जनता परिचित नहीं है। इसी प्रकार दलित समुदाय भारत में होने के कारण दलितों की समस्याएँ-सुविधाएँ, संभावनाएँ, उनके अधिकार, दलित चेतना, दलित विमर्श आदि से विश्व के अन्य देश तब तक परिचित नहीं हो सकते जब तक इनके साहित्य-लेखन का अनुवाद उपलब्ध न हो जाए। भारत जैसे बहुभाषी देश के अलग-अलग राज्यों के दलितों द्वारा अपने-अपने ढंग से संघर्ष भी किए गए है और साहित्यिक अभिव्यक्ति भी की गई है। भारतीय भाषाओं में इनका अनुवाद होता रहा है, जिससे अन्य स्थान पर बसे दलित प्रेरित-प्रोत्साहित होते रहे हैं और इससे भारत में दलित चेतना को बल मिला है।

इतना ही नहीं दलित समुदाय अपने साथ हो रहे अन्याय के अनुभव को विश्व स्तर पर प्रस्तुत करना चाहता है। इन अभिव्यक्तियों को अंग्रेजी में अनुवाद के द्वारा ही विश्व स्तर पर ले जाया जा सकता है; क्योंकि अंग्रेजी प्रजा में जातिवाद तथा छूआ-छूत नहीं है अतः इन्हें मानवीय धरातल पर देखा जा सकता है। इसी क्रम में आज अंग्रेजी भाषा में दलित साहित्य के अनुवाद की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है।

इसी प्रकार आज विश्व के किन्हीं कोनों में समलैंगिक समुदाय अपने अधिकार के लिए संघर्ष कर रहा है, जिससे प्रेरित होकर भिन्न प्रकार की शासन-प्रणाली और संस्कृति में बसने वाले समलैंगिक भी इसी प्रकार अपने अधिकार की माँग कर रहे हैं, अपनी पहचान स्थापित करके अपने लिए जगह बनाने की कोशिश कर रहे हैं। इनकी बात, इनके द्वारा किए गए आंदोलन और लिखित साहित्य का लाभ विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक अनुवाद के माध्यम से ही पहुँच सकता है।

आज ज्ञान अति तीव्रगत हुआ है। सीधे संपर्क में न आने वाली प्रजा के संदर्भ में भी लोग जानते हैं या जानना चाहते हैं। इनके राजनीतिक और स्थानगत अधिकार से अवगत होना चाहते हैं तथा उनकी पहचान के विविध कोणों की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। यह कार्य अनुवाद से ही संभव होता है। अनुवाद के द्वारा ही परिधीय समाज और संस्कृति को समग्रता में जाना जा सकता है। वस्तुतः परिधि पर जो थे वे अनुवाद के द्वारा ही मुख्य धारा में आए हैं। इसलिए अब अनुवाद और भी महत्वपूर्ण हो गया है।

आज एक संस्कृति दूसरी संस्कृति में प्रवेश कर रही है। इस बात को नूडल्स के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। नूडल्स मूलतः भारतीय नहीं है। जहाँ वह बनते हैं (चीन आदि देश) वहाँ उनके बनने की प्रक्रिया अलग है, उसको पकाने की प्रक्रिया अलग है और उसे खाने की प्रक्रिया भी अलग है। लेकिन यहाँ आते-आते मसाले से लेकर सब चीजों में भारतीयता का प्रभाव दिखाई देता है। यानी की व्यंजन विदेशी है

पर उसका भारतीयकरण हो जाता है। इसी प्रकार भारतीय व्यंजनों का विदेशीकरण भी होता है, जैसे कि समोसा। समोसा भारतीय व्यंजन है और अलग-अलग रूप से बनाये जाते हैं। किंतु अब बाज़ार में आ गया है चायनीज समोसा। इसका बाहरी रूप तो भारतीय है, पर अंदर की चीजें बदल दी गई और उसका नाम रख दिया चायनीज समोसा। इससे इसकी अनुभूति विदेशी हो जाती है। इस प्रकार यह सारी चीजें संस्कृति को प्रभावित करती है।

बहु-संस्कृति के संदर्भ में राजनीति और बाज़ार पर विचार करें तो राजनीति को समस्या हो सकती है किंतु बाज़ार को कोई समस्या नहीं है। क्योंकि बाज़ार में उत्पाद के विज्ञापन करने वाले मॉडल्स बिना आपत्ति के कहीं से भी आ सकते हैं। जैसे कि 'पटाका चाय' के विज्ञापन में देशी प्रभाव लाने के लिए एक दम देशी लगने वाली उर्मिला मातोंडकर को ले आया जाता है, लेकिन 'नेस केफे' के विज्ञापन में विदेशी प्रभाव खड़ा करने वाले मॉडल्स को लाया जाता है। लेकिन राजनीति को भिन्न संस्कृति के लोगों के बीच संपर्क स्थापित करने में, उनको अलग-अलग प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध करवाने में और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक अस्तित्व को बनाए रखने में समस्या अवश्य उपस्थित हो सकती है।

अब यह प्रश्न होता है कि संस्कृति बाज़ार में कैसे आती है। संस्कृति बाज़ार को संकल्पनाएँ देती है। जैसे कि फास्टफुड की संकल्पना। फास्टफुड का अर्थ है तुरंत तैयार हो जाने वाला खाद्य पदार्थ। पीजा, बर्गर आदि फास्टफुड को बनाने में 10 मिनट जितना समय लग जाता है, इससे भी कम समय में भारतीय भेल, चाट आदि बन जाता है। लेकिन भारत में फास्टफुड की संकल्पना नहीं है, यह बाज़ार की संकल्पना है जो विदेशी है, जिसे अपने-अपने आउटलेट्स के द्वारा बड़े आकर्षक तरीके से बेचा जाता है और ग्राहक तुरंत खाद्य पदार्थ प्राप्त करने की इच्छा से इन आउटलेट्स पर पहुँच जाता है। इस प्रकार बाज़ार तुरंत तैयार होने वाले भोजन के

साथ फास्टफुड की संकल्पना बेचता है।

इस प्रकार संस्कृति को संप्रेषित करने में बाज़ार की महत्वपूर्ण भूमिका है। उत्तर-आधुनिक समय में बाज़ार ने समाज, धर्म, राजनीति आदि के साथ संस्कृति को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया है। अब बाज़ार और संस्कृति घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। दोनों एक दूसरे से व्यापक स्तर पर प्रभावित होते हैं। शहरों के साथ दूर-दराज के क्षेत्रों में फैले उपभोक्ता तक पहुँचे बाज़ार उस स्थान विशेष की जनता की पसंद, जिसमें उनकी संस्कृति झलकती है, को ध्यान में रखकर उत्पाद बनाता है और बेचता है। यूँ बाज़ार के उत्पादों पर भिन्न-भिन्न संस्कृति की छाप दृष्टिगत होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि उत्पाद में सांस्कृतिक विविधता प्रवेश कर रही है। संस्कृति के संप्रेषण के लिए जिस बाज़ार की भूमिका महत्वपूर्ण है वह अनुवाद के बिना संभव नहीं है। अनुवाद के बिना विज्ञापन और उत्पाद को भिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों तक सफलता से पहुँचाया नहीं जा सकता। इस प्रकार बाज़ार और संस्कृति दोनों को संप्रेषित करने का कार्य अनुवाद करता है।

4.4 साहित्य और अनुवाद

बॉर्डर से तात्पर्य उस मिलन-बिंदु अथवा उस विभाजक रेखा से है जहाँ दो या दो से अधिक भाषा, संस्कृति आदि भिन्न-भिन्न विशिष्टता रखने वाले दो अस्तित्व का एक साथ विद्यमान होना। बॉर्डर लाइन पर रहने वाले लोगों पर दोनों ही तरफ की विशिष्टताओं का प्रभाव पड़ता है। या दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि बॉर्डर लाइन पर रहनेवाले न इस पार के होते है न उस पार के? इस बात को साहित्य के संदर्भ में देखे तो प्रत्येक पाठ इकहरा न हो कर दोहरा-तिहरा या अधिक भी हो सकता है। पाठ की इस प्रकार की दोहरी आदि प्रकृति मिलकर एक नये पाठ (मुख्य) का निर्माण करती है। बॉर्डर पर रहने वाली दोनों भाषाओं (संस्कृति) का प्रभाव पाठ पर दिखाई देता है। इससे निर्मित अंतर जो पाठ में दिखाई देता है, वह शैली का अंतर है;

क्योंकि बेबेल के टावर[1] के संदर्भ के अनुसार भाषा की गहन संरचना को पकड़ने पर सारी भाषाएँ एक जैसी ही है। इसका अर्थ यह हुआ कि भाषाओं को जो अलग करता है, वह शैली है। शैली से जुड़ा जो प्रश्न है वह असल में अनुवाद का प्रश्न है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में भाषाओं के विकास को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकार अपभ्रंश से हुआ है। इनमें एक ही अपभ्रंश जैसे शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी और गुजराती का विकास हुआ है। वर्षों से विकसित हो रही इन भाषाओं की सतही संरचना में शब्दार्थ, वाक्य-रचना, क्रम आदि कई बिंदुओं पर वैषम्य दृष्टिगत होता है। किंतु जैसे ही उसकी सतही संरचना को छोड़कर गहन संरचना को पकड़ा जाए तो इनमें काफी साम्य भी दिखाई पड़ता है। समुदाय विशेष की परंपराओं, मान्यताओं आदि को छोड़ दे तो भाषाओं में प्राप्त साम्य का एक कारण भारतीय संस्कृति की एकता भी है।

इसे समझने में हिन्दी और उर्दू के अनुवाद का अध्ययन लाभप्रद होगा। उर्दू का हिन्दी अनुवाद करते समय प्रायः फारसी-अरबी के कठिन शब्दों का अनुवाद किया जाता है। उर्दू में प्रयुक्त सामान्य शब्द वैसे ही बने रह सकते है क्योंकि उर्दू को हिन्दी की एक शैली ही माना जाता है। इसके बावजूद उर्दू मुसलिम धर्म की भाषा भी है और उसके साथ मुसलिम धर्म एवं संस्कृति जुड़ी हुई है। शैली की परत खुलने पर भाषा में मुसलिम धर्म और संस्कृति की अर्थ-छवियाँ सामने आने लगती है। इसका अनुवाद करने के लिए अनुवादक को मुसलिम संस्कृति की जड़ों तक जाना पड़ेगा। इस प्रकार

---

[1] बेबेल के टावर के अनुसार धरती पर हर कोई एक ही भाषा में बात करते थे। सारे लोग पूर्व से पलायन करके शिनार देश में जा बसते हैं और अपनी पहचान के प्रतीक रूप में एक शहर और उसमें सबसे बड़ी मीनार (टावर) बनाने की माँग करने लगते हैं। इस कोलाहल को देखने के लिए भगवान नीचे आते हैं। वह देखते हैं कि सभी लोग एक ही भाषा में बात कर रहे हैं और भगवान लोगों को अलग-अलग भाषा-रूप दे देते हैं। इससे उनके बीच विचारों का संप्रेषण अवरोधित हो जाता है और उनका सबसे बड़ी मीनार बनाने का जो कोलाहल था, वह शांत हो जाता है।

शैलीगत प्रश्न न रहने के कारण हिन्दी-उर्दू अनुवाद में सुविधा मिल सकती है किंतु अन्य बाह्य संदर्भ - संस्कृति आदि, अनुवाद में जटिलता का कारण भी बनते हैं।

प्रश्न उठता है, क्या होती है बॉर्डर लाइन? कोई भी पाठ असल में अन-अनुवादनीय होता है। किसी भी पाठ का अनुवाद नहीं किया जा सकता। तुलसीदास की प्रसिद्ध पंक्ति "ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी" का अर्थ प्रायः आज के संदर्भ में ग्रहण किया जाता है। किंतु प्रश्न यह है कि तुलसीदास ने उस समय क्या लिखा था, बिलकुल यही पंक्ति लिखी थी? या फिर यह पंक्ति ही उन्होंने लिखी भी थी या नहीं? यहाँ पाठ का मूल रूप और संदर्भ ही प्रश्न के घेरे में आ जाता है।

किसी भी रचना का सतही पाठ (upper text) अन-अनुवादनीय होता है। अर्थात किसी भी पाठ की व्याकरणिक संरचना का अनुवाद नहीं किया जा सकता। वरन उसके भीतरी पाठ (lower text) अर्थात अर्थ (meaning) का अनुवाद किया जाता है। भीतरी पाठ का जो अनुवाद किया जाता है वह अधिक से अधिक अनुरूप होना चाहिए और मितव्ययता के साथ उसका अनुवाद करना पड़ेगा। (Ertel पृ. 6) अन्यथा संदर्भ देने पड़ेंगे और फिर संदर्भ का सिलसिला चल पड़ने से वह समीक्षा बन जाएगी।

इस प्रकार किसी भी पाठ के दो बिंदु सामने आते हैं, एक वह जिसका अनुवाद नहीं हो सकता और दूसरा वह जिसका *फिर भी* अनुवाद किया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि हर बार अनुवादक पाठ को नये सिरे से अनूदित करता है, क्योंकि हर बार पाठ वही नहीं रहता जो पहले था। अर्थात् पाठ की अन-अनुवादनीयता के कारण पाठ में हर बार परिवर्तन आ जाने से वह बदल जाता है।

पाठ का अनुवाद करते समय संरचनावाद के महत्वपूर्ण बिंदु 'मानसिक नियंत्रण' का प्रभाव भी पाठ पर दृष्टिगत होता है। जो अनुवादक के दिमाग में होता है उससे भी अनुवाद प्रभावित होता है।

उत्तर-आधुनिकता ने पाठक को महत्व दिया है। किसी एक ही रचना को जब अलग-अलग पाठक पढ़ते हैं, तब पाठक के संदर्भ भी अलग-अलग रहते हैं और रचना का अलग-अलग अर्थ-ग्रहण होने लगता है। इस अर्थ में देखे तो रचना में जिन शब्दों का उपयोग किया गया है वह सही है या नहीं, यह तय नहीं किया जा सकता। इसीलिए भी अनुवाद अन-अनुवादनीय है किंतु फिर भी अनुवाद किया जाता है इसलिए वह अनुवादनीय भी है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हर चीज का अनुवाद हो सकता है और हर चीज अन-अनुवादनीय होती है। इस संदर्भ में परिपत्र का उदाहरण लिया जा सकता है। प्रयोजनमूलक भाषा की विशिष्टता यह है कि वह स्पष्ट और सीधी अर्थाभिव्यक्ति करती है, किंतु फिर भी परिपत्र का अलग-अलग अर्थ ग्रहण किया जाता है। प्रयोजनमूलक भाषा में यह होता है तो साहित्य की भाषा में क्या नहीं हो सकता? इस प्रकार भाषा केन्द्र में आ जाती है, जो कुछ घटित होता है उसके केन्द्र में भाषा ही होती है। भाषा के बाहर कुछ भी नहीं है। पाठ में भाषा है और भाषा इतनी अनिश्चित है कि उसके बारे में कोई भी निश्चित अर्थ निकालना मुश्किल है।

यद्यपि साहित्य में एंबिग्युएटी से सौंदर्य का निर्माण होता है। शमशेरजी की 'एक पीली शाम', 'शाम का बहता हुआ दरिया', 'कहाँ ठहरा', 'टूटी हुई बिखरी हुई' आदि कविताएं एंबिग्युएटी के कारण सौन्दर्य रचती हैं। यहाँ अर्थ की संदिग्धता का कारण पंक्तियों के बीच रहे अंतराल के कारण भी है और शब्द के विशिष्ट प्रयोग के कारण भी है। जैसे एक पीली शाम[i] कविता के आरंभ में आया अटका हुआ पत्ता कविता के अंत में अटके हुए आँसू और आसमान में दिखाई पड़ते अटके हुए सांध्य तारे से प्रत्यक्ष संबंधित न होते हुए भी अटकेपन के बोध के कारण जुड़ गया है और एक नया अर्थ उजागर होता है। अनुवाद में भी सहोपस्थित शब्द इसी प्रकार की अर्थ-संदिग्धता निर्मित करते हैं। संदिग्धता जिस प्रकार साहित्य में सौन्दर्य निर्मित करती

है उसी तरह अनुवाद में संदिग्धता सौन्दर्य निर्मित करती है या संप्रेषण की समस्या बनती है, इसे साहित्यिक अनुवाद के संदर्भ में तथा विज्ञापन के संदर्भ में परखना आवश्यक है।

वस्तुतः देरिदा शब्द के अर्थ की निश्चितता को नकारता है। जो ग़लीज़ है, मारे जाएंगे; जो काले हैं, उन्हें यह या वह (कुछ भी) नहीं मिलेगा आदि सब जो निश्चित कर दिया गया है, उस पर वह प्रहार करता है; इसे भारतीय परिप्रेक्ष्य में कहा जाए तो जो अवर्ण हैं उनको सवर्णों की बस्ती में मकान लेने का अधिकार नहीं है। इससे समाज के वह तमाम लोग जो अधिकारों से वंचित कर दिये गए हैं उनके अधिकारों की संभावना बनती है। यही बात भाषा के संदर्भ में भी देखी जा सकती है। आज भोजपुरी आदि जैसी बोलियाँ अलग समूह बनाकर भाषा के रूप में अपनी अलग पहचान बना रही हैं। अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रही हैं। यह एक विचित्र बात है परन्तु भारत में खड़ीबोली के बरक्स भोजपुरी आदि है और नेपाल में भोजपुरी के बरक्स खड़ीबोली है। भोजपुरी का प्रश्न नेपाल तथा भारत में अलग ढंग से उभरता है। भारत में भोजपुरी को महत्व देने का अर्थ है हिन्दी के व्यापक स्वीकृत खड़ीबोली के रूप को चुनौती देना। फिर केवल भोजपुरी ही नहीं राजस्थानी, ब्रजी, अवधी आदि के प्रश्न भी इससे जुड़ जाएंगे। भारत जैसे देश में जहाँ हिन्दीतर प्रांतों में हिन्दी के खड़ीबोली स्वरूप को स्वीकारा गया है वहाँ इन बोलियों के सिर उठाने के अर्थ को अलग ढंग से देखा जाएगा। परंतु नेपाल में खड़ीबोली को नहीं परंतु भोजपुरी को स्वीकारा गया है। इसका राजनीतिक संदर्भ है। भारत सरकार की हिन्दी को समर्थन देने के बनिस्बत बिहार से आए बिदेसीया की भोजपुरी को समर्थन देना वहाँ की सरकार के लिए अधिक उपादेय है।

अब पाठ के अर्थ का निर्णायक पाठक है। लेखक रचना में क्या कहता है इससे ज्यादा पाठक क्या समझता है पर बल दिया जाता है। इससे अर्थ ग्रहण में क्या

समस्या आती है इस बात को मीरा के "मेरे तो गिरधर गोपाल...." पद से समझा जा सकता है। इस पद का अर्थ वैष्णव या कृष्ण को मानने वाला ही 'मोर मुकुट' शब्द के आधार पर समझ सकता है। इसी प्रकार 'पति' और 'हसबन्ड' शब्द की अर्थ-छँटाएँ अलग-अलग हैं। मीरा के 'प्रभु गिरधर नागर' पति है, भगवान है, क्या है? इसका अनुवाद अंग्रेजी में या अन्य यूरोपीय भाषा में क्या किया जा सकता है?

भाषा अपने साथ समाज और संस्कृति विशेष की अर्थ-छवियों का वहन करती है। इसे स्रोत भाषा के समाज-संस्कृति के ज्ञान के द्वारा ही समझा जा सकता है। अनुवाद करते समय संस्कृति विषयक संदर्भ समग्र पाठ को प्रभावित करते हैं। इनका ध्यान न रहने पर या सांस्कृतिक संदर्भों की अल्प जानकारी होने पर अनुवाद की व्यापक समस्या सामने आ जाती है। "माई म्हाणों सुपणा माँ परण्याँ दीनानाथ। छप्पन कोटा जणाँ पधारयाँ दूल्हो सिरी व्रजराज।" (मीरा पदावली पृ. 75) में 'जणाँ' का क्या अनुवाद किया जा सकता है। six crore god or people तो हो ही नहीं सकता। यह लोग या देवता, क्या हो सकता है? इसे सांस्कृतिक संदर्भ से ही समझा जा सकता है। अनुवादक की सांस्कृतिक संदर्भ की अज्ञता अनुवाद में संप्रेषण की समस्या पैदा कर देती है।

संस्कृति से जुड़े मिथक और भी महत्वपूर्ण होते हैं, इन्हें संदर्भ देकर ही समझाया जा सकता है। "अकिलीज़ की एड़ियों की तरह है" यह पंक्ति को अनूदित करते समय 'अकिलीज़' कौन है, इसका संदर्भ देना पड़ेगा। उसे किस प्रकार का वरदान प्राप्त था और उसकी एड़ियों की क्या विशेषता थी यह भी बताना पड़ेगा। भारतीय परिप्रेक्ष्य में दुर्योधन को प्राप्त वरदान अकिलीज़ के संदर्भ को समझने में उपयोगी हो सकता है। अन्यथा संदर्भ के अभाव में न तो सुसंगत अनुवाद हो पायेगा और न ही पाठक सुसंगत अर्थ-ग्रहण कर पाएगा।

स्थान और समय विशेष की कुछ चीजों का अनुवाद करने में तब समस्या आती

है जब लक्ष्य भाषा में न तो उस प्रकार की चीजें होती हैं और न ही उसके लिए ऐसे शब्द होते हैं। शमशेर बहादुर सिंह की पंक्ति है "बिजली के शंख पंख ऑरोरा" इसका अर्थ है सुबह के विशिष्ट समय का प्रकाश। इसे स्थान और समय विशेष में ही देखा और अनुभव किया जा सकता है। इसका अंग्रेजी में अनुवाद करना संभव ही नहीं है।

किसी भी पाठ को उसकी मूल शैली, शिल्प और प्रभाव-अन्विति में अनूदित करना संभव नहीं होता है। डॉ. श्रीनारायण समीर (समीर पृ. 123) इस बात को अज्ञेय की 'अरी ओ करुणा प्रभामय' से ली गई एक कविता के उदाहरण को समझाते है जहाँ इसका अनुवाद स्वयं अज्ञेय ने किया है और बाद में रमन सिन्हा ने इस कविता को पुनः सृजित करने का प्रयास किया है :

मैंने देखा
एक बूंद सहसा
उछली सागर के झाग से
रंग गई क्षण भर
ढलते सूरज की आग से।

I saw
a drop suddenly
fly from the suds of the sea
flare for a second
fire from the mellowing sun. (अज्ञेय)

प्रस्तुत अंग्रेजी अनुवाद में अज्ञेय ने 'उछलना' के लिए 'Fly', 'रंग' के लिए 'Flare' तथा 'ढलना' के लिए 'Mellowing' अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है। 'Fly' का प्रचलित हिन्दी पर्याय 'उड़ना' होता है। उड़ने में सतह से ऊपर हवा में जाने का भाव होता है, जबकि उछलने का अर्थ एक सतह से तेजी से कूदकर दूसरी जगह पर अवस्थित होना है। 'Flare' शब्द का अर्थ धधक, भभूका या प्रदीप्ति है। इन शब्दों में

चमक होने का भाव है। किंतु धधक, भभूका या प्रदीप्ति से किसी वस्तु को रंगा नहीं जा सकता। रंग एक वर्ण है ओर यह किसी वस्तु का दिखलाई देने वाला गुण है। रंग एक पदार्थ भी होता है, जिससे चीजें रंगी जाती है। प्रस्तुत कविता में बूंद के ढलते सूरज की आग यानी डूबते सूरज के रंग में रंगने की बात कही गई है। यहाँ काव्यार्थ आग के ताप से तप्त होने से नहीं बल्कि लाला रंग की चमक में चमकने से है। इसी तरह 'Mellowing' का अर्थ परिपक्वता या सौम्यता है, प्रखरता हरगिज नहीं। ढलता सूरज मध्याह्न के ठीक बाद का भी हो सकता है। उसमें परिपक्वता होती है, आज भी होती है, किंतु सैम्यता कदापि नहीं। अपराहन के सूरज में जो ताप होता है, उसे चीजें तप्त ही हो सकती हैं। प्रकाश का कोई रंग नहीं होता और सूर्य के प्रकाश से किसी चीज का रंग जाना संभव नहीं। इस प्रकार उपर्युक्त दोनों काव्य रूपों में विसंगति है। शायद इसी कारण से कवि अनुवादक डॉ. रमन सिन्हा ने प्रस्तुत कविता को अपने ढंग से अनुदित करने का प्रयास किया है। डॉ सिन्हा द्वारा किए गए अनुवाद का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है :

I saw
suddenly a drop
jumped from the duds of the ocean
tinged for a moment
by the fire of the descending sun. (ड. र. सिन्हा पृ. 69)

"What is a relevant translation" में देरिदा यह कहते हैं कि अनुवाद कभी सही और गलत नहीं होता, वह रिलेवेंट अर्थात सुसंगत या प्रासंगिक होता है, क्योंकि शब्द कभी सही और गलत नहीं होता। शब्द के अर्थ की अनंतता के कारण शब्द का कोई अर्थ निश्चित नहीं किया जा सकता। (J. Derrida पृ. 182) इस लिए यह तय करना बहुत मुश्किल है कि पाठ का अनुवाद कैसे करें।

अनुवाद इस बात पर भी निर्भर करता है कि पाठ कैसा है? क्योंकि सामाजिक

इत्यादि पाठ होगा तो उस में सामाजिक इत्यादि संदर्भ होंगे। साहित्यिक पाठ होगा तो उसमें अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तो होगी ही; साथ ही इसके सामाजिक आदि संदर्भ भी हो सकते हैं, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है। इस प्रकार अनूदित होने वाला पाठ कैसा है और उसके अनुसार उसमें किस प्रकार की भाषा उपयोग में ली जाती है, उसका अर्थ क्या है, यह समझना पड़ेगा जिससे अनुवादक जब उसका अनुवाद करेगा तो कैसा अनुवाद होगा; यह जो समझ है वह अपने आप में उत्तर-आधुनिक समझ है। तो पाठ का अनुवाद कैसे किया जा सकता है? साहित्य का उदाहरण देखें तो गुजराती के नर्मद के साहित्य या हिन्दी के भारतेन्दु के साहित्य को संप्रेषित करना है तो उसके समय के शब्दार्थ का ध्यान रखना पड़ेगा, क्योंकि भाषागत अर्थ बदलते रहते हैं। उदाहरण के रूप में नर्मद के प्रसिद्ध निबंध 'मंडळी मळवाथी थता लाभ' में 'मंडळी' से तात्पर्य साहित्यकारों की सभा से है। जबकि आज 'मंडळी' का अर्थ बाज़ार से जुड़ गया है जैसे 'सहकारी मंडळी'। 'लाभ-हानि' शब्द का प्रयोग बाज़ार के संदर्भ में ही अधिक होता है। इसी प्रकार भारतेन्दु युग के साहित्यकार 'भारतेन्दु मंडल' के नाम से भी प्रसिद्ध थे। जबकि अब 'मंडल' एक पारिभाषिक शब्द है जैसे निदेशक मंडल, निर्माण मंडल आदि। अनुवाद अगर बाज़ार के लिए करना है तो अलग रूप में करेंगे, क्योंकि अनुवादक का लक्षित समूह बदल जाता है। इस प्रकार के अनुवाद में उपभोक्ता के अनुकूल और उसे आकर्षित करने वाली भाषा का प्रयोग किया जायेगा। यदि समय का संदर्भ बदल दें, आज के संदर्भ में देखें तो पाठ का अर्थ बदल जाता है। उदाहरण रूप 'शांतिदास' एक छोटे से गाँव की कहानी है जहाँ चमार जाति जूते बनाती है। कहानी का कथा नायक मुंबई से जूतों को गाँव में बेचने के लिए ले आता है, जो गाँव में बने जूतों से सुंदर और कम दाम के हैं। फिर आगे चलकर गाँव के चमार उसका विरोध करते हैं, तब यह स्वदेशी की बात थी। यह गाँधीजी से सौ वर्ष पहले की कहानी है। आज के संदर्भ में देखें तो यह कहानी

प्रासंगिक लगती है क्योंकि विदेशी उत्पाद देश में बिकते ही है। इस कहानी का अनुवाद करते समय सही संदर्भ न लिया गया तो सुसंगत अनुवाद नहीं हो पाएगा, साथ ही पाठक इसका सही संदर्भ ग्रहण न कर पाया तब भी अप्रासंगिक अर्थ ग्रहण हो जाएगा।

साहित्य और अनुवाद का अध्ययन करते हुए सिद्धांत और विमर्श के भेद को समझना होगा। सिद्धांत में निश्चितता होती है। सिद्धांत का स्वरूप, लक्षण, विशेषताएँ निश्चित होती हैं। उसे साहित्य पर लागू करने की प्रविधियाँ भी प्रायः निश्चित होती है। जबकि विमर्श में अर्थ की अनिश्चितता होती है। विमर्श का मतलब ही है, अनिश्चितता। सन् 1980 के बाद साहित्य में विमर्श आ जाता है। विमर्श स्वयं ही अनेक अंतीय है, अनिश्चित है, उसका अनुवाद करने में अर्थ की फिसलन और भी मुखर हो जाती है।

4.5 भाषा और अनुवाद

भाषा भावाभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है। साहित्य उसका सर्जनात्मक स्वरूप है। भाव, विचार आदि को अभिव्यक्त करने में भाषा की महत्ता स्वयं प्रतिपादित है। रूपवाद, संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद जैसे भाषा से जुड़े आंदोलनों ने भाषा को परिधि पर से केन्द्र में लाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। उत्तर-आधुनिक युग में इस बात को प्रतिपादित किया गया कि भाषा सिर्फ संरचना ही नहीं है, उसके साथ पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि कई सारे संदर्भ जुड़े रहते हैं; जो पाठ को अर्थवान बनाते हैं। सांस्कृतिक संदर्भ में ज़रा-सा परिवर्तन होने से अर्थ भी हाथ से फिसल जाता है। भाषा में निहित इन संदर्भों की संकल्पना तभी समझ में आ सकती है जब इनकी जड़ों तक पहुँचा जाए। क्योंकि हर संकल्पनात्मक शब्द का अर्थ उसकी संस्कृति इत्यादि की जड़ों में पड़ा होता है। अनुवाद कार्य करते समय अनुवादक के लिए यह सबसे महत्वपूर्ण कार्य बन जाता है कि वह इस बात को अच्छी तरह

समझे कि भाषा किस तरह संस्कृति इत्यादि की जड़ों में जाकर अर्थ देती है। इसके अभाव में स्रोत सामग्री के अर्थ को अनुवाद में संप्रेषित करना मुश्किल है।

भाषा किस तरह संस्कृति इत्यादि की जड़ों में जाकर अर्थ देती है, इस बात को 'रस' शब्द के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। 'रस' एक केवल काव्यशास्त्रीय संज्ञा ही नहीं है, यह शब्द काव्यशास्त्रीय संज्ञा से आगे बहुत गहरे तक जाता है। जब यह कहा जाता है कि 'मुझे अच्छा लगता है।' और 'मुझे इस बात में रस है।' तब इन दोनों वाक्यों में अंतर है, इनका अर्थ एक नहीं है। रस को वही व्यक्ति समझ सकता है जो भारतीय संस्कृति में पलकर बड़ा हुआ हो। इसलिए 'रस' शब्द का अर्थ अन-अनुवादनीय है। यहाँ देरिदा का प्रसिद्ध कथन संदर्भित किया जा सकता है कि "ऐसा कुछ भी नहीं है जो अनूदित नहीं हो सकता और कुछ भी ऐसा नहीं है कि जो अनूदित हो सकता है।" यही कारण है कि 'रस' शब्द का फिर भी अनुवाद किया जाता रहा है। किंतु संस्कृति इत्यादि की जड़ों तक ले जाने वाले इस प्रकार के पाठ या शब्द अनुवाद में संप्रेषण की समस्या अवश्य ही खड़ी करते हैं।

भाषा में संस्कृति, धर्म, परिवार, समाज आदि से संबंधित विशिष्ट शब्द होते हैं। इनका सही अर्थ तभी पकड़ा जा सकता है जब इनके संदर्भों तक पहुँचा जाए। भाषा किस प्रकार संस्कृति इत्यादि की जड़ों में जाकर अर्थवान होती है और भाषा की इन जड़ों तक जाकर अर्थ-ग्रहण न करने पर अनुवाद में संप्रेषण की किस प्रकार की समस्या सामने आती है इसका अध्ययन साहित्यिक और साहित्येतर उदाहरण सहित निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।

4.5.1 भाषा की संस्कृति केन्द्रिता और अनुवाद

भाषा के साथ संस्कृति की अर्थ-छवियाँ वहन करती है जो रचना के समसामयिक परिवेश के संदर्भ में और भी विशिष्ट अर्थ को द्योतित करती है। ऐसे संस्कृति विशिष्ट अर्थ को पकड़ने के लिए भाषा में निहित संस्कृति की जड़ों तक

पहुँचना पड़ेग है। और तभी पाठ का सही संप्रेषण भी संभव हो पाएगा। भाषा किस तरह संस्कृति की जड़ों में जाकर अर्थवान होती है इसे समझने के लिए 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का 'दलित द्राक्षा' का उदाहरण लिया जा सकता है। "जहाँ कहीं अपने आप को उत्सर्ग करने की, अपने-आपको खपा देने की भावना प्रधान है वहीं नारी है। जहाँ कहीं दुःख-सुख की लाख-लाख धाराओं में अपने को दलित द्राक्षा के समान निचोड़कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वहीं 'नारी-तत्त्व' है, या शास्त्रीय भाषा में कहना हो, तो 'शक्ति-तत्व' है।" (द्विवेदी पृ. 130)

यह संस्कृति विशेष का उदाहरण है। इसमें दो आयाम दिखाई देते हैं। एक, उस समय की स्त्री-संकल्पना का आयाम और दूसरा, संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का आयाम। इसमें उस समय की स्त्री की संकल्पना है, जिसमें उसे जिस तरह से देखा जाता था, उसे यह करना चाहिए है यह नहीं आदि समाविष्ट है। उपन्यास में 'दलित-द्राक्षा' की तरह निचोड़ना का व्यापक अर्थ है। अंगूर समग्रतः रस से भरा होता है जो अपनी रसात्मकता के लिए जाना जाता रहा है। अंगूर धीरे-धीरे अंदर से सूख जाता है, उसमें से रस को निकाल नहीं दिया जाता। इसलिए अंगूर (किस मिस) खाने पर मीठा लगता है। यहाँ 'दलित-द्राक्षा' विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त शब्द है जो बिना किसी शर्त के स्त्री के समग्र समर्पण को अभिव्यक्त करता है। यह निपुणिका के साथ जुड़ा शब्द है जिसमें निपुणिका के सभी संदर्भ जुड़े हुए हैं। इसमें 'दलित-द्राक्षा' द्वारा अपनी इच्छा से अपना जो कुछ अच्छा था - उसके समर्पण का भाव है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा निपुणिका के लिए कल्पित यह शब्द उस समय (आठवीं सदी) के समाज का सत्य है। आज जब इसके अनुवाद की बात करते हैं तो यह जो पुरी संकल्पना है वह अनूदित नहीं हो सकती है। क्योंकि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'दलित-द्राक्षा' का संस्कृत आधारित पाठ पसंद किया है। इसके लिए कोई हिन्दी शब्द भी नहीं है। इसका हिन्दी 'निचुड़े हुए अंगूर' नहीं हो सकता।

उस शब्दावली में उस संकल्पना के कारण जो एक रोमांटिसिज्म और सौंदर्य उठता है वह अनुवाद में संभव नहीं हो पाता। 'निचुड़े हुए अंगूर' में ही पाठ का सौंदर्य समाप्त हो जाता है।

यह रचना सन् 1946 की है जिसकी कथावस्तु का फलक आठवीं शताब्दी में हुए हर्षवर्धन और बाणभट्ट का समय है। ऐतिहासिक संदर्भ में यह संस्कृत का समय था और संस्कृत का काल होने के कारण यह भाषा तब बहुत ही योग्य थी। लेकिन यही बात सन् 1946 में नहीं हो सकती थी, किंतु उपन्यास की कथावस्तु का फलक उस समय का था इसी लिए यह संभव हो सका है। आज इस शब्द को प्रयुक्त करने में और भी ज्यादा समस्या आएगी। अब 'दलित' शब्द का अर्थ ही बदल गया है। इसके अनुवाद में भी समस्या आएगी क्योंकि अब यह पुरी संकल्पना बदल गई है।

'दलित-द्राक्षा' शब्द न होकर संकल्पना है। यह जिस समय की उपन्यास की कथावस्तु है उस समय में अच्छी स्त्री का सम्मान करने से जुड़ी संकल्पना है। किंतु उपन्यास में यह वाक्य कौन कहता है? निपुणिका कहती है। वह निपुणिका, जिसके पति का देहांत हो गया है, जो घर से भाग जाती है, नट के समूह में जुड़ जाती है, फिर भाग जाती है और पान की दुकान करती है; वह स्त्री जिसे समाज ने स्वीकार नहीं किया था, समाज के लिए उसकी कोई अहमियत नहीं हैं; समाज-स्वीकृत मानदंडों में निपुणिका नहीं आती। लेकिन अपने आपको दलित-द्राक्षा की तरह निचोड़कर देना समाज-स्वीकृत मानदंडों का हिस्सा है। जैसे कि किसी भी पतिव्रता से क्या उम्मीद की जाती है कि वह अपने आपको समर्पित कर दे। समाज-स्वीकृत नियमों का अनुसरण करने वाली स्त्री को ही समाज स्वीकृति देता है। निपुणिका ने इन सब चीजों को छोड़ दिया है, लेकिन उसका जो समर्पण भाव है, वह वही है जो समाज-स्वीकृत मानदंडों में हैं। इस कारण यहाँ 'दलित-द्राक्षा' एक प्रकार का संघर्ष पैदा करता है, जिसमें एक तो उस समय का सामान्य अर्थ है और दूसरा चरित्र से निकलता हुआ अर्थ है और इसी

लिए इसे अनूदित करना बहुत मुश्किल है।

इस प्रकार यहाँ देखा जा सकता है कि भाषा किस तरह संस्कृति की जडों में ले जाती है और जब तक उस पूरे परिवेश को नहीं जानते, उसकी जड़ों में नहीं जाते तब तक उसका अनुवाद नहीं कर सकते। यूँ ही 'दलित-द्राक्षा' या 'squashed grapes' लिख लेने से काम नहीं चलेगा, क्योंकि 'दलित-द्राक्षा' शब्द एक पूरी संस्कृति को बताता है। अनुवाद करते समय इसे फूट नोट में भी नहीं बताया जा सकता क्योंकि यह तो एक पूरा विवरण है।

भाषा की संस्कृति केन्द्रिता को साहित्येतर उदाहरण से भी समझ सकते हैं। भारतीय संस्कृति में नवरात्री में किए जाने वाला 'गरबा' का महत्वपूर्ण स्थान है। 'गरबा' एक संकल्पना है। इसमें छेद वाला मटका लेकर देवी की परिक्रमा की जाती है। यह छेद वाले मटके पूरा ब्रह्मांड है। जैसे आसमान में तारे दिखाई देते हैं वैसे ही इन मटकों की अंदर की ज्योत छेद में से तारे की तरह झिलमिलाती हुई दिखाई देती है। इनमें जो देवी है वह शक्ति है और ब्रह्मांड शक्ति के कारण ही टिका हुआ है। यह सारी चीजें मिथक के अंतर्गत आती हैं जो भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। अब गरबा की इस संकल्पना का अनुवाद कहाँ तक संभव है?

एक अन्य उदाहरण दीपावली के समय दिये जाने वाले 'सबरस' का लिया जा सकता है। वैसे तो सगुन के रूप में सबरस अर्थात नमक ही दिया जाता है। भौतिक पदार्थ के रूप में सबरस और नमक एक है। पर क्या सामान्य रूप से यह कहा जाता है कि सब्जी आदि में सबरस डालिए? नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सबरस के साथ एक पूरी प्रक्रिया जुड़ी हुई है जिसकी सांस्कृतिक संकल्पना है। यह भारतीय संस्कृति के नये वर्ष के प्रथम दिन पर प्रातःकाल में शुभकामनाएँ देने के लिए प्रतीक रूप में दिया जाता है। संस्कृति की जड़ों तक पहुँचने पर ही इस संकल्पना को समझा जा सकता है। अन्यथा इस संकल्पना का अनुवाद नहीं किया जा सकता।

भारतीय संस्कृति और संवेदना को अभिव्यक्त करने वाले संस्कार, मोह, हाथ पीले करना, कन्यादान, मुखाग्नि देना आदि ऐसे शब्द हैं जिनके साथ संकल्पनाएँ जुड़ी हुई है। इनका अनुवाद अन्य भाषाओं में शायद ही किया जा सकता है।

4.5.2 भाषा की धर्म केन्द्रिता और अनुवाद

धर्म की सत्ता प्राचीन काल से मनुष्य को प्रभावित और परिचालित करती रही है। विश्व के प्रत्येक कोने में किसी न किसी प्रकार के धार्मिक विचार एवं मान्यताएँ सदा से ही प्रवर्तित होती रही हैं। प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में मनुष्य जीवन के अधिकांश क्रिया-कलाप, आदतें आदि को धर्म से जोड़कर देखा गया है। आधुनिक काल में प्रबल हुई तार्किकता और बौद्धिकता ने धार्मिक रूढ़ियों और मान्यताओं को नकारते हुए परिमार्जित करने का मार्ग अवश्य ही प्रशस्त किया लेकिन मानव जाति को अच्छाई के रास्ते पर ले जाने वाली धर्म की मूल संकल्पनाओं को आज भी प्रायः संसार भर में स्वीकार किया जाता है। यही कारण है कि मनुष्य जिस किसी भी समाज या समुदाय में रहता है उस पर धर्म का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अवश्य ही दिखाई देता है। साहित्य का संबंध मनुष्य से है। अतः साहित्य में धार्मिक अभिव्यक्तियाँ आना स्वाभाविक है। साहित्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा जिस प्रकार सांस्कृतिक अर्थ-छवियों को प्रकट करती है उसी प्रकार धार्मिक अर्थ-छवियों का वहन करती है। धर्म से जुड़ी अर्थ-छवियाँ गूढ़, रहस्यमयी और संकल्पनात्मक होती हैं, जिसे भाषा की जड़ों में जाने पर ही सही-सही अर्थ में ग्रहण किया जा सकता है। साथ ही अनुवादक के स्तर पर उसे अपनी मातृ भाषा की धार्मिक अभिव्यक्तियों का भली-भाँति ज्ञान हो सकता है लेकिन दूसरी भाषा - अर्जित भाषा में धार्मिक अभिव्यक्तियों के सूक्ष्म ज्ञान का अभाव अनुवाद कार्य में समस्या खड़ी करता है।

भाषा किस तरह धर्म की जड़ों में जाकर अर्थवान होती है और इनका अनुवाद करना कहाँ तक संभव है इसका अध्ययन कुछ उदाहरणों द्वारा किया जा सकता है।

हिन्दी में रचित भक्ति-साहित्य में भाषा की धर्म केन्द्रिता दृष्टिगत होती है। सूरदास की रचनाओं में अनेक बार 'लीला' शब्द का प्रयोग हुआ है। सूरदास के पदों में प्राप्त होने वाला 'लीला' केवल एक शब्द मात्र नहीं है, यह एक संकल्पना है। जैसे कृष्ण-लीला। यहाँ लीला का क्या अर्थ है? यह केवल घटनाएँ हैं! जैसे दान लीला, माखन-चोरी लीला, रास लीला आदि। नहीं, इसे कोई कार्यकलाप भी नहीं कहा जा सकता। इसे एक शब्द से नहीं समझाया जा सकता। 'लीला' को समझने के लिए पुष्टिमार्ग और शुद्धादैतवाद की जड़ों तक जाना पड़ेगा, तभी उसकी संकल्पना समझ में आएगी अन्यथा इसका अर्थ ग्रहण करना संभव ही नहीं है। जब अर्थ ग्रहण करने में समस्या आएगी तो इसे लक्ष्य भाषा में संप्रेषित करना और भी कठिन हो जाएगा।

भारतीय दर्शन परंपरा में 'ब्रह्म', 'जीव', 'माया', 'जगत' आदि की संकल्पना है। इनको आधार बनाकर आचार्यों ने भिन्न-भिन्न सिद्धांत प्रतिपादित किए है। इससे निर्मित सिद्धांतों में इन सभी की संकल्पना में विविधता दृष्टिगत होती है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के प्रमुख कवियों की रचनाओं में दार्शनिक पक्ष की सबलता है। इनकी दार्शनिक रचनाओं को उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि तक पहुँचे बिना समझा नहीं जा सकता। जैसे संत काव्य परंपरा में कबीर की दार्शनिक रचनाएँ धार्मिक-दार्शनिक संकल्पनाओं को प्रस्तुत करती है। कबीर के संबंध में यह जानना और भी महत्वपूर्ण है कि वह किसी एक ही धर्म और संप्रदाय से प्रभावित न होकर विभिन्न धर्म और संप्रदाय से प्रभाव ग्रहण करते रहे हैं। कबीर की रचना में प्रस्तुत दार्शनिक पक्ष में प्रयुक्त होने वाली 'माया' क्या है। यह सिर्फ एक शब्द नहीं हैं, 'माया' एक संकल्पना है। कबीर के लिए 'माया' मिथ्या है, ईश्वर साधना में बाधक है, जिसे 'अविद्या माया' कह कर अभिहित किया गया है। "माया महाठगनी हम जानी।" जब तक 'माया' की संकल्पना को कबीर के दार्शनिक विचार - अद्वैतवाद के संदर्भ में नहीं देखा जाता तब तक इसका अर्थ ग्रहण संभव नहीं है। जायसी (विशिष्टाद्वैतवाद से मिलता-जुलता),

सूरदास (शुद्धाद्वैतवाद) और तुलसीदास (विशिष्टाद्वैतवाद) की रचना में प्रस्तुत 'माया' की संकल्पना कबीर की 'माया' की संकल्पना से भिन्न है। इन सभी को एक ही दृष्टि से देखा-समझा नहीं जा सकता। कबीर की रचनाओं में प्राप्त हठयोग, कुंडलिनी, आदि भी इसी प्रकार की दार्शनिक संकल्पनाएँ हैं जिस की जड़ों तक पहुँचे बिना न तो उसका अर्थ-बोध संभव है और न ही अनुवाद कार्य।

'बेसना' शब्द का अर्थ हिन्दू धर्म और जैन धर्म में अलग-अलग है। हिन्दुओं में 'बेसना' शब्द का अर्थ मृत्यु के बाद परिजनों द्वारा मृतक की आत्मा की शांति के लिए एकत्र होना है। यह अर्थ जैन धर्म में नहीं होता। जैन धर्म में 'बेसना' शब्द (मूल शब्द 'बियासणु') वरसी तप के लिए बैठने को कहते है। यहाँ संस्कृति एक ही है पर धर्म अलग होने के कारण अर्थ अलग हो जाता है। यदि किसी जैन कृति का अनुवाद कर रहे हैं तो उसका 'बेसना' का अर्थ मृत्यु के बाद का नहीं कर सकते। इस प्रकार भाषा धर्म की जड़ों में जाकर अर्थ देती है।

भारतीय धर्म-दर्शन में ईश्वर द्वारा अनेक विध ऐसे अवतार लिए गए हैं जो वास्तविक विश्व से दूर आधिभौतिक विश्व में ही संभव है। इन अवतारों के पीछे कोई न कोई विशिष्ट संकल्पनाएँ जुड़ी हुई है। आज इनका मिथक के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है। इन संकल्पनाओं या मिथक को समझे बिना इनका अनुवाद करना संभव नहीं है। भारतीय धर्म-दर्शन की परमात्मा के विशिष्ट अवतार से जुड़ी ऐसी किसी कृति का विदेशी भाषा में अनुवाद तभी संभव हो सकता है जब उसी प्रकार का कोई अवतार या मिथक लक्ष्य भाषा की धर्म-संस्कृति में हो(?) इस प्रकार के पाठ का कितना ही अनुवाद किया जाए पर परमात्मा के अवतार से जुड़ी सूक्ष्म बातों और संदर्भों का अनुवाद कैसे संभव हो सकता है? उदाहरण के लिए भगवान नरसिंह का आधा शरीर नर और आधा शरीर सिंह का है। इस बात को किसी विदेशी भाषा में कैसे अनूदित किया जाएगा? संभव है कि ग्रीक साहित्य में नरसिंह भगवान का कोई

समतुल्य मिल जाए, तब भी हिरण्यकशिपु के वरदान के अनुसार परमात्मा ने यह जो अवतार लिया था उस संदर्भ का अनूदित होना कहाँ तक संभव है?

धार्मिक साहित्य में परमात्मा के एक रूप जैसे कृष्ण या राम या विष्णु आदि के अनेक नाम उपलब्ध होते हैं। इन नामों के साथ विशिष्ट संदर्भ जुड़े होते हैं। अनुवाद करते समय अनुवादक को इन नाम के साथ जुड़े संदर्भ विशेष का ज्ञान होना आवश्यक है। जैसे मीरा का पद "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोय।" का अनुवाद करते समय कृष्ण को 'गिरधर' क्यों कहा गया इसकी जड़ तक अनुवादक को जाना पड़ेगा, तभी उसे पता चल पाएगा कि इस नाम के साथ इंद्र-कृष्ण के संघर्ष का संदर्भ है और कृष्ण ने इंद्र के कोप से ब्रजवासियों को बचाने के लिए गिरि (पर्वत) को कई समय तक अपनी एक ऊँगली पर उठा रखा था। अर्थात् 'गिरिधर' नाम में कृष्ण का रक्षक होने का भाव जुड़ा हुआ है। यहाँ मीरा के पद में प्रयुक्त 'गिरिधर' शब्द कष्ट में जीवन यापन कर रही मीरा का कष्ट से रक्षा करने का भाव संप्रेषित करता है। इस प्रकार धर्म की जड़ में गए बिना ऐसे पाठ का अनुवाद नहीं कर सकते।

4.5.3 भाषा की समाज (परिवार) केन्द्रिता और अनुवाद

सस्यूर ने भाषा के निर्माण में समाज या समुदाय की विशेष भूमिका को उजागर किया है। उसके अनुसार भाषा समाज या समुदाय द्वारा बोलने के प्रयासों से निर्मित होती है। इसका सीधा अर्थ यह है कि भाषा समाज विशेष की परंपराओं, मान्यताओं और उससे जुड़े अन्य तत्वों से प्रभावित होती है। भाषा में ऐसे कई सारे शब्द रहते हैं जिनका अर्थ उस भाषा से जुड़े विशेष समुदाय या समाज की जड़ तक पहुँचने पर ही ग्रहण किया जा सकता है। रचना में प्राप्त ऐसे शब्द भाषा की परिवार-समाज केन्द्रिता को इंगित करते हैं।

कई बार समाज और परिवार से जुड़ा एक ही शब्द अलग-अलग भाषा में भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होता हैं। जैसे हिन्दी और बंगला दोनों आधुनिक आर्य भाषा है और

इन दोनों में प्रयुक्त 'बाबा' शब्द का अर्थ भिन्न हैं। बंगला में 'बाबा' शब्द का उपयोग 'पिता' के लिए होता है जबकि हिन्दी में यह 'पितामह' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। शौरसेनी अपभ्रंश से ही विकसित हिन्दी और गुजराती में कई समान शब्द हैं लेकिन उनमें अर्थ-भिन्नता है। जैसे, गुजराती में 'पिता' के लिए कई बार 'भाई' और 'दादा' शब्द का प्रयोग किया जाता है लेकिन हिन्दी में 'भाई' से भ्राता और 'दादा' से 'पितामह' का ही अर्थ ग्रहण किया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उपर्युक्त शब्द उस अर्थ को नहीं बताते जिसके लिए वह प्रयुक्त हुए हैं। अनुवाद करते समय ऐसे शब्दों से अर्थ ग्रहण में समस्या होती है। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की इस पारिवारिक-सामाजिक विशिष्टता का सूक्ष्म ज्ञान न होने पर अनूदित पाठ में प्रासंगिकता का निर्वाह नहीं हो सकता।

'गोदान' में होरी और गोबर के बीच जो संबंध है, उनके बीच जो संवाद होता है और जिस भाषा का प्रयोग होता है उसमें संप्रेषण की जो समस्या उपस्थित होती है उसे देखा जा सकता है। 'गोदान' में वह दोनों एक दूसरे को कुछ संप्रेषित नहीं कर पाते हैं। उस समय का सामाजिक परिवेश ऐसा था कि गोबर कुछ कह नहीं पाता है। यदि गोबर कह पाता कि मेरे साथ ऐसा कुछ हुआ है या मैं झुनिया से प्रेम करता हूँ, मैं उससे शादी करना चाहता हूँ, मेरा बच्चा होने वाला है इत्यादि तो कोई समस्या ही नहीं थी। इस प्रकार जब 'गोदान' जैसी कृति का अनुवाद करते हैं तब उसके परिवेशगत सामाजिक संबंधों को जानना पड़ेगा, अन्यथा उसका अनुवाद नहीं कर पाएंगे। यही बात मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' उपन्यास में स्पष्ट रूप से खुलकर सामने आती है। इसमें संघर्ष भी है। 'गोदान' में गोबर शहर भाग जाता है, जबकि 'चाक' में सारंग निर्मित परिस्थिति का सामना करती है, अवसर को पहचानती है, क्योंकि यह आज के समय की बात है। इसीलिए रंजीत श्रीधर के साथ अलीगढ़ न जाने के लिए सारंग को कड़े शब्दों में मना करता है, तब भी सारंग उसकी एक न सुनकर कहती है,

"नहीं-नहीं, इस हालत में मैं अकेले श्रीधर को कहीं नहीं जाने दूँगी।" (पुष्पा पृ. 308) और प्रधान के पीछे चलकर वहाँ से श्रीधर को लेकर अलीगढ़ का रास्ता पकड़ लेती है। उपन्यास में सारंग चुनाव के लिए भी खड़ी होती है। सारंग गाँव में है लेकिन जो भाषा का प्रयोग है वह सारंग और उसके पति रंजीत के बीच के संबंध को उजागर करती है।

इस प्रकार 'गोदान' और 'चाक' के इन संदर्भों को समझने के लिए भाषा की जड़ों में जाना पड़ेगा तभी पता चल सकता है कि कैसे सब बदल गया है। दोनों उपन्यास में भारत का गाँव वही है, लेकिन चीजें बदल गई है, समय बदल गया है। 'गोदान' में स्वतंत्रता पूर्व का ग्राम्य जीवन है। गोबर कुछ नहीं कह पाता उसका कारण है उस समय की सामाजिकता। उस समय के समाज में यह सब कहना असंभव था। लेकिन समय बदलने से सामाजिक बात बदल जाती है। 'चाक' में स्वतंत्रता के बाद का ग्राम्य जीवन है। जहाँ संप्रेषण के तमाम साधन उपलब्ध हुए है, इससे संप्रेषण में कोई बाधा नहीं रही है। इसलिए सामाजिक बाधाएँ भी नहीं रही है। अंतः इन दोनों रचनाओं को एक ही समय बिंदु से नहीं देखा जा सकता और कालगत बदलाव को पहचाने बिना इनका अनुवाद भी नहीं किया जा सकता।

प्रेमचंद के 'गोदान' और ओमप्रकाश वाल्मीकि के 'जूठन' में जो रिश्ता है वह निम्न जाति के चरित्रों से संबंधित है। 'गोदान' में चरित्र निम्न जाती के हैं, लेकिन वह एक उच्च वर्ग के लेखक द्वारा लिखा गया है और 'जूठन' दलित लेखक द्वारा लिखा गया उपन्यास है। इन दोनों उपन्यासों में संबंध जातिगत है और परिवेशगत भी है। इनमें समाज की जातिगत व्यवस्था से गुजरते हुए पिता-पुत्र के संबंधों को देखा जा सकता है। गोदान के गोबर में विरोध के सुर उठते हैं, लेकिन होरी बार-बार उसे तत्कालीन सामंती परिवेश के अनुकूल होकर, उनका विरोध न करने की सलाह देता है। यहाँ पुत्र गोबर अन्याय का विरोध करता है उसमें पिता का समर्थन नहीं मिलता

है। जूठन में ओमप्रकाश वाल्मीकि को स्कूल में दाखिला मिलने पर भी उनको वर्ग में पढ़ने के लिए बैठने न देना और स्कूल साफ करवाने की बात का जब उनके पिता को पता चलता है तब वे गाँव के प्रधान तक को इस बात की शिकायत करते हैं। यहाँ पुत्र तो परिवेशगत दमन के मारे चुप रहता दिखाया गया है लेकिन उसके साथ हुए अन्याय का विरोध स्वयं उसके पिता ही करते हैं। यहाँ प्रश्न यह भी उठता है कि जिस प्रकार जूठन एक दलित लेखक द्वारा लिखी गई रचना होने के कारण सवर्णों के अत्याचारों के विरोध को मुखर रूप से उठाती है। इसके बरक्स क्या गोदान में गोबर के विरोध को होरी द्वारा बार-बार रोके जाने के पीछे एक सवर्ण लेखक का मानस कार्यरत है? परिवशगत और जातिगत संदर्भ की जड़ तक पहुँचे बिना इन दोनों रचनाओं का एक ही तरह से अनुवाद करना कहाँ तक उचित होगा?

4.5.4 भाषा की बाज़ार केन्द्रिता और अनुवाद

भूमंडलीकरण ने जिस व्यापकता से संसार भर के बाज़ार को प्रभावित किया है उसी व्यापकता से मूल्य, साहित्य, धर्म, संस्कृति आदि भी बाज़ार से प्रभावित हुए हैं। पूंजी आज के संसार के परिचालन का मुख्य आधार बन गई है। मनुष्य की अधिकांश लिखित अभिव्यक्तियाँ इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। आज साहित्यिक रचनाओं की बाज़ारोन्मुखता इसी का उदाहरण प्रस्तुत करती है। बाज़ार और उसके उत्पादों का प्रचार-प्रसार करने में विज्ञापन और उत्पाद के परिचयात्मक साहित्य की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। इसलिए भाषा की बाज़ार केन्द्रिता के उदाहरण साहित्य से अधिक विज्ञापन में दिखाई देते हैं।

उपभोक्ता को आकर्षित करने के लिए विज्ञापन में परंपरागत शब्दों के अर्थ बदलकर उन्हें नयी अर्थवत्ता प्रदान की जाती है। ऐसे विज्ञापन वास्तविक अर्थ की संकल्पना को परिवर्तित करके शब्दों की नयी संकल्पनाएँ निर्मित करते हैं। जैसे 'मीठा' शब्द का अर्थ कुछ भी मिठास भरी वस्तु या मिठाई से है। लेकिन कैडबरी के

विज्ञापन का स्लोगन 'कुछ मीठा हो जाए।' को बार-बार सुनने के बाद आज लोगों के मन-मस्तिष्क में 'मुंह मीठा करने' से कैडबरी का ही चित्र निर्मित होता है, पेड़ा, बर्फी आदि मीठी चीजों का नहीं।

इस संदर्भ में एक और उदाहरण मिंटोस के विज्ञापन का देखा जा सकता है। मिंटोस का विज्ञापन गधा के माध्यम से किया गया है। गधा लक्षणा परंपरा में मूर्खता का प्रतीक माना गया है। इस विज्ञापन में उसे प्रारंभ में इसी रूप में लिया गया है, लेकिन जैसे ही वह मिंटोस खाता है उसके 'दिमाग की बत्ती चलती है' और वह एक बुद्धिशाली मनुष्य की तरह उलझन को सुलझा देता है। यहाँ विज्ञापन में गधे के पारंपरिक अर्थ-प्रतीक को बदल दिया गया है। लेकिन यहाँ मिंटोस खाया गधा और मिटोस न खाया गधा अलग हो जाता है। वस्तुतः विज्ञापन के माध्यम से इस बात को मनुष्य पर लागू किया गया है।

कुल मिलाकर बाज़ार से जुड़े लेखन की भाषा बाज़ार केन्द्रित होती है। इनका अनुवाद भाषा के परंपरागत अर्थ को लेकर नहीं किया जा सकता। इन्हें अनूदित करने के लिए बाज़ार की जड़ तक जाना पड़ेगा। क्योंकि यहाँ भाषा बाज़ार की जड़ो में जाकर अर्थवान होती है। भाषा की बाज़ार केन्द्रिता को समझने पर ही सही दिशा में अनुवाद कार्य संपन्न हो सकता है।

4.5.5 लिप्यंतरण की समस्याएँ

भाषा और साहित्य का घनिष्ठ संबंध है। साहित्य का अर्थ भाषा-संरचना और उसमें निहित अन्य संदर्भगत अभिव्यक्तियों से प्रभावित होता है। वहीं साहित्य भी भाषा को प्रभावित करता है। तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत बहुत सारी भाषाओं में रचित कृतियों की तुलना की जाती है, इससे एक भाषा से दूसरी भाषा भी प्रभावित होती है और उसमें विशिष्ट भाषिक अभिव्यक्तियों के आगमन से भाषा का मुहावरा भी परिवर्तित होता है।

लिप्यंतरण से तात्पर्य है लिपि का अंतरण। किसी भाषा की लिपि में लिखे गए शब्दों को दूसरी लिपि में ज्यों का त्यों लिखना लिप्यंतरण कहा जाता है। लिप्यंतरण करते हुए एक भाषा की लिखावट को दूसरी भाषा में ज्यों का त्यों लिख लिया जाता है। जैसे पेट्रोल, डीजल, सोफा, लेपटोप, की-बोर्ड आदि। लिप्यंतरण का मूल आधार वर्तनी और उच्चारण की समानता है। ध्वनिविज्ञान के अंतर्गत लिप्यंतरण का अध्ययन किया जाता है।

अनुवाद में स्रोत भाषा के पाठ को लक्ष्य भाषा में पुनः सृजित करते समय कुछ ऐसे शब्द सामने आते हैं जिनका अनुवाद करना संभव नहीं होता। जैसे विज्ञान एवं तकनीकी शब्द, पारिभाषिक शब्दावली, व्यक्तिवाचक-स्थानवाचक संज्ञाएँ, आंचलिक शब्द या समाज विशेष की मनोदशा से जुड़े शब्द का अनुवाद करना संभव नहीं होता। अतः एक भाषा से दूसरी भाषा में इन शब्दों को ज्यों का त्यों ले लिया जाता है। भाषाओं में इस प्रकार के शब्दों का लिप्यंतरण एक सामान्य प्रक्रिया है। इनमें कभी शब्दों का अंगीकरण किया जाता है तो कभी उसमें अनुकूलन की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि से हिन्दी में और हिन्दी से इन विभिन्न भाषाओं में लिए गए अनेक शब्द दूसरी भाषा में किए गए शब्दों के अंगीकरण के ही उदाहरण हैं। भाषा का विकास अनुकूलन के द्वारा भी होता है। अंग्रेजी के godown, report, comedy, technique आदि क्रमशः हिन्दी में गोदाम, रपट, कामदी, तकनीक आदि के रूप में न्यूनाधिक ध्वनि परिवर्तन के साथ अनुकूलित कर लिए गए हैं।

यद्यपि सभी समृद्ध भाषाओं में शब्द-निर्माण की क्षमता होती है। इसी क्षमता के आधार पर हिन्दी में कई बार नए शब्दों का निर्माण किया जाता है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में विषय से संबंधित पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण किया गया है। तथापि विशिष्ट भाषिक अभिव्यक्तियों और समाज, संस्कृति, धर्म, बाज़ार आदि से जुड़े संदर्भ एवं संकल्पनात्मक शब्दावली प्रायः उसी रूप में ग्रहण करने के अलावा और कोई

उपाय नहीं रहता।

अनुवाद करते समय कई बार समाचार विज्ञापन आदि में लयात्मकता या भाषा में प्रवाहिता लाने के लिए एक भाषा के वाक्य में दूसरी भाषा के शब्दों का लिप्यंतरण करके प्रस्तुत किया जाता है। जैसे Raju makes satyanash of satyam में 'सत्यानाश' का लिप्यंतरण किया गया है। तो कई बार एक भाषा के वाक्य में दूसरी भाषा के शब्द ज्यों के त्यों अपनी स्रोत लिपि के साथ ही प्रस्तुत कर दिये जाते है। जैसे पैप्सी के विज्ञापन का स्लोगन, ये दिल माँगे more...। या डर्मी कुल पावडर का स्लोगन, ठंडा-ठंडा cool-cool.

संक्षेप में, एक भाषा के लेखन से दूसरी भाषा प्रभावित होती है और विकसित भी होती है। अनुवाद के माध्यम से इस प्रकार का विकास अधिक मात्रा में तीव्र गति से संभव हो जाता है।

कुल मिलाकर उत्तर-आधुनिकयुग में पाठ का अर्थ-बोध करने के लिए भाषा में निहित संदर्भों की संकल्पना तक पहुँचना आवश्यक है। साहित्य और साहित्येतर लेखन में प्रयुक्त होने वाली भाषा सांस्कृतिक, धार्मिक, पारिवारिक-सामाजिक और बाज़ार की संकल्पना से जुड़े विविध संदर्भों का वहन करते हुए शब्दों को अर्थवान बनाती है। इन संदर्भों की जड़ों तक पहुँचने के लिए अनुवादक के पास स्रोत भाषा के ज्ञान से अधिक लक्ष्य भाषा का सूक्ष्म ज्ञान होना आवश्यक है, साथ ही उसमें इन संदर्भों को जानने, समझने की मनोवृत्ति भी होनी चाहिए। इसके अभाव में अनूदित कृति मूल पाठ को सफलता से संप्रेषित नहीं कर पाएगी।

4.6 राजनीतिक वर्चस्व और अनुवाद (सत्ता और अनुवाद)

मनुष्य की सभी अभिव्यक्तियों का संबंध राजनीति से है। मनुष्य अपने भाव-विचारों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। भाषा में शब्द होते हैं। मनुष्य अपने भाव-विचारों के अनुकूल शब्दों का चुनाव करता है। शब्दों के चुनाव की प्रक्रिया

में मनुष्य के भाव-विचारों के अनुकूल न रहने वाले कई सारे शब्दों को दरकिनार कर दिया जाता है। इस प्रकार अभिव्यक्ति, फिर चाहे वह मौखिक हो या लिखित, पर राजनीति का वर्चस्व दिखाई देता है। यह बात अनुवाद पर भी लागू होती है। जब इस ढंग से अनुवाद पर सोचते हैं तो पता चलता है कि अनुवाद में स्रोत भाषा के पाठ को लक्ष्य भाषा में ले जाने का काम इतना सरल भी नहीं है। क्योंकि अनुवाद में सोच-समझकर जागरूक अवस्था में रहकर न सिर्फ पाठ का चयन, ग्रहण, लक्ष्य भाषा में उसका पुनः संयोजन एवं संरचना-संदर्भगत निर्माण ही किया जाता है, वरन कुछ खास मामलों में अनूदित होने वाले पाठ की जानकारी एवं कुछ अंशों का प्रतिषेध करते हुए, कूटकरण, जालसाजी और गुप्त संकेतों का निर्माण भी किया जाता है।

इसलिए अनुवाद में ये प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाते हैं कि क्या अनूदित किया जा रहा है और क्या नहीं? किसे प्राधान्य दिया जा रहा है और किसे परिधि पर रखा जा रहा है? आदि। ये प्रश्न अनुवाद की राजनीति से जुड़े हुए हैं जिसमें कभी विचारधारा, कभी सत्ता-केन्द्र और कभी आर्थिक कारक मुख्य भूमिका निभाते हैं। अनुवाद पर मुख्य रूप से तीन प्रकार की विचारधाराओं का प्रभाव पड़ता है - राजनीतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक। इन विचारधाराओं की अपनी-अपनी शक्तियाँ हैं और शासन-क्षेत्र भी हैं, जहाँ अपने समर्थन को प्रोत्साहित किया जाता है और स्वयं के लिए ख़तरा पैदा करनेवालों को हतोत्साहित भी किया जाता है।

4.6.1 राजनीतिक वर्चस्व का अर्थ

राजनीतिक वर्चस्व से तात्पर्य है - मनुष्य के जीवन के तमाम महत्वपूर्ण पक्षों का सत्ता (केन्द्र) में रहने वाली विचारधाराओं से प्रभावित होना। वर्तमान विश्व को और गहराई से देखे तो जीवन के प्रत्येक पक्ष राजनीति या विचारधारा से प्रभावित दिखाई देते हैं। सामाजिक व्यवस्था सत्ता (राजनीति) से जुड़ी हुई है। साहित्य समाज की अभिव्यक्ति करता है, मनुष्य के जीवन की अभिव्यक्ति करता है, अर्थात् साहित्य

भी किसी न किसी प्रकार की राजनीति या विचारधारा के आवरण से होकर जीवन की प्रस्तुति करता है। देरिदा के चिंतन के फलस्वरूप अनुवाद पिछले कुछ दशकों से रचना (लेखन) का समस्थानीय हो गया है। जब रचना (लेखन) राजनीतिक या विचारधारात्मक हो गई है तब अनुवाद इससे अछूता नहीं रह सकता। साथ ही वर्तमान समय में शिक्षा, साहित्य, समाज-व्यवस्था और व्यवसाय पर राजनीति या विचारधाराओं का गहरा प्रभाव दृष्टिगत होता है। इस परिवेश में रहनेवाला अनुवादक भी राजनीतिक वर्चस्व से प्रभावित होता है।

4.6.2 साहित्य और अनुवाद में राजनीतिक वर्चस्व

देरिदा वाल्टर बेंजामिन की संकल्पना का आधार लेते हुए अनुवाद को लेखन (रचना) का उत्तर-जीवन कहता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्राचीन ज्ञान को संरक्षित करने में व्याख्या और टीकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और यदि व्याख्या और टीका को अनुवाद माना जाता है तो निश्चित रूप से इस प्रकार अनूदित हुए ज्ञान-ग्रंथों को उत्तर-जीवन प्राप्त हुआ है। डॉ. रंजना अरगड़े 'अनुवाद के आईने में विचारधारा एवं राजनीति के चेहरे' लेख में रचना के उत्तर-जीवन के कई उदाहरण राहुल सांकृत्यायन की अनुवाद-प्रवृत्ति में रेखांकित करती हैं, "यह बात बहुत जानी-मानी है कि राहुल सांकृत्यायन ने उन अनेक ग्रंथों का चीनी से संस्कृत या हिन्दी में अनुवाद किया। अनुवाद का यह उत्तर-जीवन, पाली से चीनी में, चीनी से फिर संस्कृत / हिन्दी के अनुवाद-पथ पर से आ कर (यात्रा कर के - travel / travail) हमारे पास लौट आए हैं।" (अरगड़े)

आज अनुवाद स्वतंत्र अनुशासन बन चुका है। तुलनात्मक साहित्य और सामान्य साहित्य के अधीनत्व से स्वतंत्र हो गया है। अनुवाद की स्वतंत्रता के साथ ही अनुवाद की विचारधारा और उसकी राजनीति का प्रश्न भी उपस्थित होता है। तो क्या अनुवाद की अपनी एक अलग राजनीति होती है? और यह राजनीति साहित्य की राजनीति से

अलग होती है या उनमें कोई समानता होती है?

आंद्रे लेफेवेयर एवं सूसन बैसनेट ने 'Translation, Histroy and Culture' की भूमिका में, अनुवाद कार्य को सत्ता का वर्चस्व प्रभावित करता है - इस बात को रेखांकित किया था। "अनुवाद की प्रविधियों में बदलावों की व्याख्या करने के लिए अनुवाद अध्ययन विशेषज्ञ को किसी समाज के भीतर सत्ता संरचनाओं में होनेवाले उलट-फेर और उसकी अनिश्चितताओं की गहराई में झाँकना पड़ेगा। उसे यह भी समझना पड़ेगा कि संस्कृति के उत्पादन में सत्ता के वर्चस्व की भूमिका क्या है और जिसके बड़े फलक पर अनुवाद का उत्पादन भी उसी का एक हिस्सा बन जाता है।"

प्रत्येक रचना की अपनी एक विचारधारा होती है जो उसे अपने रचनाकार से मिलती है। साहित्यकार जिस विचारधारा को मानता है उसका प्रभाव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से उसके लेखन में प्रतिबिंबित होता ही है। उत्तर-आधुनिक युग में साहित्य में विचारधारा का स्थान विमर्शगत अध्ययन ने ले लिया है। विमर्शगत अध्ययन पुनः विचारधारात्मक खंडों में बँटकर उपस्थित हो रहा है। उदाहरण के रूप में स्त्री-विमर्श को लिया जा सकता हैं, जहाँ समाजवादी नारी, मार्क्सवादी नारी, मनोविश्लेषणवादी नारी, गाँधी-विचार प्रेरित नारी या फिर राष्ट्रवादी नारी आदि विविध प्रकार की नारीवादी विचारधारा स्त्री-विमर्श का अटूट हिस्सा बन चुकी है। इसी प्रकार भारतीय परिवेश में ही विभिन्न प्रकार के दलित और आदिवासी भी है। किसी विशेष विचारधारा में आस्था रखने वाला अनुवादक जब अनुवाद कार्य करता है तब प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से उस विचारधारा का प्रभाव अनुवाद पर पड़ता है। उदाहरण के रूप में मानो कोई नारीवादी अनुवादक किसी पाठ का अनुवाद कर रहा है तब उस मूल पाठ की विचारधारा को ग्रहण करने में नारीवादी दृष्टिकोण प्रभावी रहेगा और उसे लक्ष्य भाषा में ले जाते समय शब्द-चयन, भाषिक-संरचना से लेकर सामाजिक-सांस्कृतिक आदि संदर्भों पर भी इसका प्रभाव रहेगा। तुलसीदास की प्रसिद्ध पंक्ति "ढोर / ढोल

गँवार सूद्र पसु नारि, ये सब ताड़न / तारन के अधिकारी" में पहले शब्द से क्या अर्थ लिया जाएगा - ढोर या ढोल; और बाद में आने वाला ताड़न या तारन शब्द में से किसे महत्व दिया जाए? क्या इसे (नारी को) 'ताड़ना' चाहिए की 'तारना' चाहिए के अर्थ में लिया जाएगा? इसे नारीवादी अनुवादक या दलित अनुवादक भिन्न-भिन्न अर्थ में ले सकते हैं और पाठ को अपनी विचारधारा के अनुसार अर्थ दे सकते हैं।

साहित्य में प्रस्तुत होने वाले चरित्र वास्तविक जगते से भिन्न होते हैं। साहित्यकार की कलम से निर्मित होने पर चरित्र वास्तविक दुनिया के निरे मनुष्य नहीं रह पाते। रचनाकार का दृष्टिकोण चरित्र में प्रतिबिंबित हुए बिना नहीं रह पाता। मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद, गांधीवादी विचारधारा, प्रगतिशील विचारधारा या इस प्रकार की अन्य किसी भी विचारधारा में मानने वाले रचनाकारों की रचनाओं को इसके उदाहरण स्वरूप ले सकते हैं। इस प्रकार न 'गोदान' का होरी, न 'शेखर एक जीवनी' का शेखर या न 'ईदगाह' का हामिद ही वास्तविक जगत के होरी, शेखर या हामिद हैं, न हो सकते हैं। उत्तर-आधुनिक युग में रचनाओं में विचारधारा विमर्शों का रूप लेकर प्रस्तुत हो रही है।

अनुवाद का कार्य शून्य में संपन्न नहीं होता। उस पर अपने समय की संस्कृति और राजनीति का प्रभाव पड़ता है और वह उससे परिचालित भी होता है। इसीलिए हमेशा से ही युग की प्रमुख विचारधारा को प्रस्तुत करने वाले साहित्य का अनुवाद अधिक मात्रा में होता रहा है। लंबे काल-खंड और भौगोलिक व्याप को प्रभावित करने वाली विचारधारा को प्रस्तुत करने वाली रचनाओं के अनुवाद को भी प्रायः प्राथमिकता मिल जाती है। क्योंकि इससे रचना को अधिक पाठक मिल जाते हैं। किसी भी अनुवाद को मिली यह पाठकीय स्थिति से यह स्पष्ट होता है कि "राजनीतिक विचारधारा का बल अनुवाद के रिलेवेंट होने में अधिक काम करता है। इसी प्रकार... अनुवाद कैसा हुआ है, यह बात इस मुद्दे पर निर्भर है कि अनुवाद किस चीज़ का हुआ

है। अनुवाद की गुणात्मकता इस बात पर तय नहीं की जाती कि वह मूल से कितना वफ़ादार है, इत्यादि। अथवा वह 'रिलेवेंट' है या नहीं। बल्कि, कौन-सी विचारधारा उसे रिलेवेंट बनाएगी, इस बात पर ध्यान दिया जाता है।'' (अरगड़े, अनुवाद के आईने में विचारधारा एवं राजनीति के चेहरे)

अनुवाद में रचना के सौंदर्य पक्ष से अधिक महत्व विचारधारा का होता है। यहाँ अनुवाद की राजनीति अलग ढंग से काम करती है। उत्तर-आधुनिक युग में अनुवाद कार्य स्रोत भाषा के पाठ को लक्ष्य भाषा में संप्रेषित करने पर अधिक बल देता है। जब अनुवाद स्रोत भाषा के पाठ को लक्ष्य भाषा में संप्रेषित करता है तब मूल रचना का एक बड़ा हिस्सा (पाठगत सौंदर्य) नष्ट हो जाता है। अतः अनुवाद पढ़ते समय रचनागत सौंदर्य और उत्तम सर्जनात्मक पाठ जैसी पाठक की मांग उतना महत्व नहीं रखती जितना कि रचना की प्रचलित विचारधारा का होता है।

अनुवाद को सत्ता की राजनीतिक सोच व्यापक स्तर पर प्रभावित करती है। रचनाकार किसी भी विचारधारा का अनुसरण कर सकता है और उसे अपनी रचना में प्रस्तुत भी करता है। राजनीति सीधे-सीधे किसी कृति को अपनी विचारधारा के अनुरूप नहीं ढाल सकती है और न ही यह आवश्यक है कि रचनाकार उस प्रकार के दबाव में काम करें। लेकिन अनुवाद कार्य के साथ यह हो सकता है। अनुवादक राजनीतिक सोच से प्रेरित अनुवाद कर सकता है। इसका कारण यह है कि एक ही रचना के एकाधिक अनुवादकों द्वारा अनुवाद किए जा सकते हैं। (राजनीति से जुड़ा या व्यावसायिक रूप से अनुवाद करने वाला अनुवादक मिल ही सकता है।) रचना की तरह अनुवाद का कोई कॉपीराइट नहीं होता। सत्ता की राजनीति यह भी तय कर सकती है कि कौन-से पाठ अनूदित होंगे और किन अनुवादों को सम्मानित किया जाएगा। किन अनुवादों को स्वीकृति मिलेगी और किन को कभी नहीं मिलेगी। साहित्यकार के संदर्भ में प्लेटो का दृष्टिकोण सर्व विदित है। प्लेटो राजनयिक (ambassador) था और वह अपने देश से

साहित्यकारों को निकाल देना चाहता था क्योंकि उसकी नजर में साहित्यकार अनाचार के पोषक थे। यह प्लेटो के समय की राजनीतिक सत्ता की सोच थी। विक्टर ह्युगो का कथन है कि "जब आप किसी राष्ट्र को कोई अनुवाद पढ़ने के लिए देते हैं, तो आप माने चाहे न माने, राष्ट्र उसे अपनी अस्मिता पर एक हमले के रूप में लेता है।"[2] जब राष्ट्र स्वयं की अस्मिता पर हमले को महसूस करता है तब वह अनुवाद को अपनी विचारधारा के अनुकूल करने की दिशा में कदम बढ़ाता है। इसलिए अब मुख्य मुद्दा यह उभरकर सामने आता है कि वर्तमान राजनीति किस प्रकार की विचारधारा को मानती है? क्या इसी विचारधारा की वाहक रचनाओं का अनुवाद किया जाएगा? या अन्य विचारधारा की रचनाओं में मिलावट (अनुवाद की राजनीति) करके रचना के अनुवाद को वर्तमान राजनीति की विचारधारा के अनुकूल बनाया जाएगा? या बनाया जाता है?

बाज़ारवाद के इस दौर में अनुवाद बाज़ार से व्यापक स्तर पर प्रभावित हो रहा है। आज अनुवाद बाज़ार की माँग को ध्यान में रखकर किए जाते हैं। क्योंकि अनुवाद करने का प्रमुख उद्देश्य धन कमाना भी है। आज का प्रकाशक व्यापारी का रूप अख्तियार कर चुका है जो साहित्य की गुणवत्ता से अधिक धन कमाने में रुचि रखता है। इनके द्वारा बाज़ार में खड़े अनुवादक पर यह दबाव भी बनाया जाता है कि अनुवाद के इतने ही (कम) रुपये मिलेंगे? या इतने ही (कम) समय में अनुवाद करना पड़ेगा? या मूल रचना का इतने कम पृष्ठों में ही अनुवाद करना है? ऐसे में अनुवादक भी बाज़ारोन्मुखी होकर अनुवाद करके मूल पाठ के साथ अन्याय कर बैठता है। इस प्रकार विचारधाराएँ बाज़ारोन्मुखी हो गयी है और बाज़ार मुनाफे की विचारधाराओं से

[2] When you offer a translation to a nation, the nation will almost always look on the translation as an act of violence against itself.

संचालित हो रहा है। कुछ बड़े प्रकाशन संस्थान बाज़ार और विचारधाराओं की राजनीति करते हैं।

उत्तर-आधुनिक युग में कंप्यूटर और अंतर्जाल की तकनीक ने जिस वर्चुअल बाज़ार को जन-जन तक पहुँचाया है वह अनुवाद की राजनीति को कम करने में उपकारक सिद्ध हुआ है। पहले अनुवाद का काम दिलाने वाला भी अनुवादक को दबाता रहता था। अब अंतर्जाल पर व्यावसायिक रूप से अनुवाद करने वाली कई वेब साइट्स है जो अनुवाद का काम लेती भी है और अनुवादक को काम देती भी है। यहाँ अनुवादक किस के पाठ का अनुवाद कर रहा है यह नहीं जानता, न काम देनेवाला अनुवादक को जानता है। इससे पाठ या रचनाकार के प्रति अनुवादक द्वारा रखे जाने वाले पूर्वग्रह से मुक्ति मिल जाएगी; अनुवादक रचनाकार के दबाव से मुक्त होकर अनुवाद कार्य कर सकेगा और वह अपनी क्षमता अनुसार अनुवाद का काम करके उचित पारिश्रमिक भी प्राप्त कर सकेगा।

4.6.3 विचारधारा और अनुवादक

किसी भी चीज को देखने का प्रत्येक व्यक्ति का अपना अलग तरीका होता है जो उसे अपने परिवेश से प्राप्त होता है। इस संदर्भ में देरिदा दो बातों को महत्वपूर्ण मानता है - एक, पाठ को किस तरह पढ़ा जाता है और दूसरा, पाठ की समझ का आधार किस अंश को बनाया जाता है। ऐसे में यह प्रश्न होता है कि क्या अनुवाद कार्य अनुवादक की या अन्य किसी तरह की विचारधारा से प्रभावित होता है या नहीं? क्योंकि अनुवाद कार्य एक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया में यदि अनुवादक चाहे तो, उसके पास इतनी जगह अवश्य ही रहती है कि वह, अनुवाद को विचारधारा की दृष्टि से मूल से इतर कोई अन्य अर्थ दे सकता है।

अनुवाद कार्य विचारधारात्मक स्तर पर अनुवादक से विभिन्न रूप से प्रभावित होता है। अनुवाद करते समय यह परिवर्तन मुख्यतः तीन कारणों से होता है। एक,

जिसमें अनुवादक की जल्दबाजी, नासमझी या गलती (अज्ञता) के कारण कई बार अनुवाद में इस प्रकार का परिवर्तन हो जाता है। दूसरा, पाठ को अनूदित करते समय अनुवादक पाठ को सोद्देश्य एक निश्चित विचारधारात्मक धरातल प्रदान करता है और तीसरे, कई बार राजनीतिक, सामाजिक आदि दबाव के कारण अनुवादक अनूदित लेखन को निश्चित अर्थ प्रदान करता है। इन तीनों ही कारणों से अनूदित पाठ मूल अर्थ से दूर चला जाता है। प्रथम कारण अनुवादक की कमजोरी से संबंधित है जिसका इस मुद्दे से ज्यादा कुछ लेना-देना नहीं है। प्रसिद्ध मराठी अनुवादक चंद्रकांत पाटील ने हिन्दी कवि नागार्जुन की 'मेघ बजे' कविता का 'घनु वाजे' अनुवाद करने में 'हल का है अभिनंदन' को 'हलके से अभिनंदन' कर के अर्थ का अनर्थ कर दिया। (पाटील पृ. 16) लेकिन जब दूसरे और तीसरे कारणों के परिणाम स्वरूप अनुवाद को परिवर्तित करते हुए एक पूर्व-निश्चित अर्थ दिया जाता है तब उसे अनुवाद की राजनीति कहा जाता है।

पाठ का अनुवाद करते समय उसकी भाषा-संरचना और समाज, संस्कृति आदि अन्य संदर्भों का विशेष ध्यान रखा जाता है। जब अनुवाद के द्वारा स्रोत भाषा के समाज, संस्कृति, राजनीतिक विचारधारा आदि की अर्थ-छवियों को लक्ष्य भाषा में पुनः सृजित किया जाता है तब एक तरह से अनुवाद दो भाषा, उसमें वहन करने वाले समाज, संस्कृति, राजनीतिक संदर्भों आदि को जोड़ता है और इन्हें समझने की पारस्परिक बोधगम्यता भी प्रदान करता है। अनुवाद से जुड़ी विचारधारा नये सांस्कृतिक और राजनीतिक मानचित्र निर्मित करते हुए दो या अधिक साझा प्रदेशों की अभिव्यक्तियों के बिंदु स्थापित करती हैं। तो कभी अनुवादक की राजनीति जोड़-तोड़, बीच-बचाव, समायोजन / स्वायत्तीकरण का खेल भी रचती है। अनुवादक की राजनीति के चलते निर्मित अनूदित पाठ मूल रचना के प्रति द्वेष निर्मित करने का षड्यंत्र रचता है। इससे लक्ष्य भाषा के पाठकों में मूल रचना के प्रति पूर्व निश्चित भ्रान्ति

फैलायी जाती है। क्योंकि लक्ष्य भाषा के पाठक अनुवाद के माध्यम से ही मूल रचना को जानते हैं। यह राजनीति तब और भी खतरनाक बन जाती है जब अनुवाद में किसी व्यक्ति, लेखक या समाज को 'टार्गेट' करके उसके अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न लगाने की कोशिश की जाती है। गुजराती के राजेन्द्र शाह के अनुवादों के उदाहरण से डॉ. रंजना अरगड़े लिखती हैं कि, "अपनी काव्यातमकता में तथा गुजराती साहित्य के इतिहास में राजेन्द्र शाह कितने भी बड़े कवि क्यों न हो, ज्ञानपीठ विवाद के बाद, गुजरात के बाहर अब इस बात को स्वीकार करना कि आप उन्हें महत्वपूर्ण मानते हैं, अपने आप को अस्पृश्य कर लेने के बराबर है। अगर राजेन्द्र शाह के प्रति फैले इस तिरस्कार या घृणा भाव को हमें बढ़ाना हो तो हम उनके बदतर अनुवाद कर के उस राजनीति को पुष्ट कर सकते हैं। इतना ही नहीं, कविताओं के चुनाव से ले कर अनुवाद की गुणात्मकता तक इस राजनीति को फैलाया जा सकता है।" (अरगड़े, अनुवाद के आईने में विचारधारा एवं राजनीति के चेहरे)

कुल मिलाकर उत्तर-आधुनिकतावाद और उसमें भी मुख्य रूप से देरिदा के विचार दर्शन ने अनुवाद की मूल अवधारणा को गहराई से प्रभावित किया है। विखंडनवादी चिंतन ने अब तक दबाए गए या स्थगित किए गए पाठ को महत्व देते हुए उसे प्रकाश में लाने का मार्ग प्रशस्त किया। पाठक को पाठ के अर्थ निर्णायक माना गया, जिससे पाठ में पाठक के संदर्भ भी जुड़ गए और पाठ में अर्थ की अनेकता सामने आने लगी। भाषिक स्तर पर वाक्य-रचना, व्याकरण आदि से लेकर दो शब्दों के बीच दिये जाने वाले स्पेस से भी अर्थ परिवर्तित होने की बात देरिदा ने उठायी और संस्कृति आदि अन्य संदर्भों के कारण अर्थ ग्रहण करने में उपस्थित होने वाली समस्याओं का विचार किया है। पाठ में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि संदर्भों से जुड़ी संकल्पनाओं को अनूदित पाठ में संप्रेषित करने की समस्याएँ भिन्न-भिन्न रूप में उपस्थित होती है। भाषा अपने साथ इन सभी संदर्भों का वहन करती हुई अर्थवान होती है। भाषा की जड़ तक पहुँचे बिना मूल पाठ को अनुवाद में संप्रेषित

करना संभव नहीं है। अतः भाषा की जड़ों तक पहुँचकर अर्थ को प्राप्त करने की और लक्ष्य भाषा में समतुल्य खोजकर लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुसार उसे अनुवाद में संप्रेषित करने की समस्या और भी व्यापक रूप लेकर उपस्थित होती है। आज संप्रेषण के अद्यतिकृत साधनों की उपलब्धता से संप्रेषण का एक सुव्यवस्थित तंत्र निर्मित हो चुका है, फिर भी कई बार उत्पाद की बिक्री के लिए किए जाने वाले विज्ञापन संदेश को संप्रेषित नहीं कर पाते हैं और ग्रहीता को अर्थ ग्रहण करने में समस्या का सामना करना पड़ता है। कई बार अनुवाद की राजनीति के चलते कोई लेखक महत्वपूर्ण होने पर भी प्रकाश में नहीं आ पाता और कई बार उससे कमतर रचनाकार की रचनाओं का अनुवाद हो जाने से वह अचानक प्रसिद्ध हो जाता है। अनुवादक की राजनीति से अनूदित होने वाली कृति को निश्चित विचारधारा के अनुसार दिशा प्रदान की जाती है। इससे एक साजिश के तहत रचनाकार और उसके सृजन कर्म के प्रति लक्ष्य भाषा के पाठकों में भ्रांति फैलायी जाती है। संक्षेप में, अनुवाद कार्य में विभिन्न संदर्भों से अलग-अलग समस्याएँ सामने आती हैं।

---

[i] एक पीली शाम
पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
शान्त
मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल
कृश म्लान हारा-सा
(कि मैं हूँ वह
मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं?)
वासना डूबी
शिथिल पल में
स्नेह काजल में
लिये अद्भुत रूप-कोमलता
अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू
सान्ध्य तारक-सा
अतल में।